सत्संग-सार-संग्रह

(संशोधित तथा परिवर्द्धित)

लेखक—

श्रीकृष्णानन्दजी

सत्संग-सार--संग्रह

लेखक---

श्री कृष्णानन्द जी

संस्करण] १९६५ [मूल्य १।) रुपया

पुस्तक मिलने का पता :—

(१) स्वामीदीन गुरुदीन बुकसेलर कामता बाजार, चित्रकूट (उ० प्र०)

(२) सत्संग भवन ७ सरदारपुरा रोड जोधपुर

(३) केशरीकुमार दास ग्राम—शेरपुर, पो० नारायणपुर माया लोहना रोड़ दरभंगा (बिहार)

(४) रामवन सतना (म. प्र.)

(५) शिव बुकडिपो चौड़ा रास्ता, जयपुर

विषय सूची

विषय		पृष्ठ
१. मातृ स्तोत्र	...	१
२. श्री कनक धारा स्तोत्रम्	...	४
३. श्री कनक धारा स्तोत्र का हिन्दी रूपान्तर	...	८
४. नम्रनिवेदन	...	११
५. श्री कृष्ण चरितामृत	...	१४
६. सुन्दरता क्या है ?	...	२९
७. अपना निर्माण कीजिए	...	३२
८. सेवा का महत्त्व	....	३५
९. आदर्श जीवन के लिए	...	३८
१०. प्रेम कैसे हो ?	...	४०
११. हम शान्ति चाहते हैं	...	४४
१२. अपने विचार को शुद्ध कीजिए	....	४७
१३. अपने जीवन को सुन्दर बनाइये	...	५०
१४. प्रार्थना का महत्व और उसका स्वरूप	...	५३

विषय		पृष्ठ
१५. भजन में सफलता क्यों नहीं मिलती ?	...	५७
१६. हम दुःखी क्यों हैं ?	...	६०
१७. हमारा सच्चा वल	...	६३
१८. दुःख का स्वागत कीजिए	...	६६
१९. आत्मविकास के मार्ग	...	६९
२०. सम्राट बनकर सम्राट से मिलो	....	७२
२१. अपनी कठिनाइयों को दूर कीजिये	...	७५
२२. प्रतिकूल परिस्थिति प्रभु का प्रसाद है	...	७८
२३. जीवन को सार्थक बनाइये	....	८२
२४. सन्तोष से शान्ति	...	८५
२५. ज्ञान योग द्वारा कल्याण प्राप्ति	....	८८
२६. घर–घर में कल्प वृक्ष लगाइये	...	९४
२७. अपने जीवन को दिव्य बनाइये	....	९७
२८. मानवता और उसके भेद	...	१००
२९. प्रेम में बाधक	....	१०९
३०. गीता ज्ञान की श्रेष्ठता	...	१११
३१. सदा दीवाली सन्त की	...	११४
३२. श्री भगवन्नाम की अपार महिमा	...	११८
३३. भक्त और भगवान	...	१२४
३४. गोमाता की रक्षा कीजिए	...	१२७
३५. श्री रघुनाथाष्टक	...	१३०
३६. मानव–जीवन का उद्देश्य और उसकी प्राप्ति	..	१३२
३७. जीवन सुधार के लिए	...	१३५

परिचय

स्वर्गीय मुरारीलाल का जन्म शाहजहाँपुर के खत्री–टण्डन परिवार में हुआ था। ये अपने माता–पिता के सबसे बड़े पुत्र थे। इनके पिता का नाम श्री गिरिधारीलाल है। इनका एक फर्म भी है। जिसका नाम "गिरधारीलाल बनवारीलाल सर्राफ" है। इनका विवाह प्रयागवासी श्री रामकिशोर कपूर की कन्या "सरोज" से हुआ था।

ये बड़े ही भावुक थे। सदा युवक–जीवन के ज्वलन्त उदाहरण स्वरूप रहे। नगर के छोटे–बड़े सभी आफिसरों से इनका घनिष्ट सम्बन्ध रहा। मानव–सेवा इनके जीवन का उद्देश्य था। ये अपनी अल्पायु में ही सामाजिक उत्थान के कार्यों में संलग्न थे ही कि इनकी आसामयिक मृत्यु आंत के आॅपरेशन के फलस्वरूप लखनऊ अस्पताल में ८ जून १९५५ ई० में हो गई। मृत्यु के समय आपकी अवस्था २८ वर्ष की थी। आपकी मृत्यु से समाज को तथा इनके परिवार को बहुत दुःख हुआ। इनकी दो बालिकाएँ हैं। ये सामाजिक तथा जन–सम्पर्क के कार्यों में लगे ही थे कि भगवान् ने इन्हें बुला–कर "One who is loved by God dies soon" (ईश्वर जिसको प्यार करता है।, उसको शीघ्र बुला लेता है।) बात को चरितार्थ कर दिया। अल्प समय में ये जितने ही कार्यों को करने में समर्थ हुए—प्रसंशनीय है। अत एवं इनकी दिवंगत आत्मा की स्मृति में इस पुस्तक का प्रकाशन हुआ। भगवान् इनकी अमर आत्मा को शान्ति प्रदान करें यही शुभ कामना है।

शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

और पति ही महेश्वर हैं। निर्गुण एवं सबके आधारभूत ब्रह्मा भी पति ही हैं। ऐसी महिमा वाले आप पूज्य पतिदेव को प्रणाम है। भगवन्! पत्नी के एकमात्र बान्धव! दया सागर। इस दासी से जानकर या अनजान में जो अपराध बन गये हों उन्हें क्षमा कीजिए। अपनी इस सेवा के सारे दोष को क्षमा कीजिए।

सृष्टि के आदिकाल में लक्ष्मी, सरस्वती, पृथ्वी और गंगा देवी ने इस परम पुण्यमय पुरातन स्तोत्र का पाठ किया था। सावित्री ने भी पहले ब्रह्मा जी के प्रति नित्य ही इस स्तुति का उपयोग किया है। पार्वती ने भी कैलास मे शंकरजी के उद्देश्य से भक्तिपूर्वक इस स्तोत्र का पाठ किया है। इसी प्रकार देवताओं और ऋषियों की पत्नियों ने भी अपने-अपने पति के लिए पूर्वकाल में इस स्तोत्र का पाठ किया है। यह स्तोत्र सभी पतिव्रताओं के लिए कल्याणकारी है।०

—सकलन

(नोटः—स्त्रियों को चाहिए कि इसका पाठ प्रतिदिन करें।)

॥ श्री राम ॥

पति–स्तोत्र

नमः कान्ताय भर्त्रे शिवचन्द्रस्वरूपिणे ।
नमः शान्ताय दान्ताय सर्वदेवाश्रयाय च ॥
नमो ब्रह्मस्वरूपाय सतीप्राणपराय च ।
नमस्याय च पूज्याय हृदाधाराय ते नमः ॥
पञ्च प्राणाधिदेवाय चक्षुषस्तारकाय च ।
ज्ञानाधाराय पत्नीनां परमानन्ददायिने ॥
पतिर्ब्रह्मा पतिर्विष्णुः पतिरेव महेश्वरः ।
पतिश्च निर्गुणाधार ब्रह्मरूपो नमोऽस्तुते ॥
क्षमस्व भगवान् दोषं ज्ञानाज्ञानकृतं च यत् ।
पत्नीबन्धो दयासिन्धो दासीदोषं क्षमस्व च ॥
इदं स्तोत्रं महापुण्यं सृष्ट्यादौ पद्मया कृतम् ।
सरस्वत्या च धरया गङ्गया च पुरातनम् ॥
सावित्र्या चकृतं पूर्वंब्रह्मणे चापि नित्यशः ।
पार्वत्या च कृतं भक्त्या कैलासे शङ्करायच ॥
मुनीनां च सुराणां च पत्नीभिश्च कृतं पुरा ।
पतिव्रतानां सर्वासां स्तोत्रमेतच्छुभावहम् ॥

शिव और चन्द्र जिनके स्वरूप हैं, जो शान्त, दान्त तथा सम्पूर्ण देवताओं के आश्रय है, सती नारी के कमनीय भर्ता उन पति परमेश्वर को नमस्कार है। ब्रह्म स्वरूप, सती के लिये प्राणों से भी बढ़ कर प्रिय, वन्दनीय, पूज्य तथा हृदयाधार आपके पति–देवता को प्रणाम है। जो पाँचों देवता के अधि-देवता, नयनों के तारे, ज्ञान के आधार तथा पत्नी को परमानन्द प्रदान करने वाले हैं, उन पति भगवान् को नमस्कार है। पतिही ब्रह्मा, पति हो विष्णु

(९)

श्री राम

मातृ स्तोत्र

व्यास उवाच

पितुरप्यधिका माता गर्भधारणपोषणात् ।
अतो हि त्रिषु लोकेषुनास्ति मातृसमो गुरुः ।

नास्ति गंगासमं तीर्थं नास्ति विष्णुसमः प्रभुः ।
नास्ति शम्भुसमः पूज्यो नास्ति मातृसमो गुरुः ॥

नास्ति चैरादशीतुल्यं व्रतं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।
तपो नानशनात्तुल्यं नास्ति मातृसमो गुरुः ॥

नास्ति भार्यासमं मित्रं नास्ति पुत्रसमः प्रियः ।
नास्ति भगिनीसमा मान्या नास्ति मातृसमो गुरुः ॥

न जामातृसमं पात्रं न दानं कन्यया समम् ।
न भ्रातृसदृशो बन्धुर्न च मातृसमो गुरुः ॥

देशो गंगान्तिकः श्रेष्ठो दलेषु तुलसी दलम् ।
वर्णेषु ब्रह्मणः श्रेष्ठो गुरुर्माता गुरुष्वपि ॥

पुरुषः पुत्ररूपेण भार्यामाश्रित्य जायते ।
पूर्वभावाश्रया माता तेन सैव गुरुः परः ॥

मातरं पितरं चोभौ दृष्ट्वा पुत्रस्तु धर्मवित् ।
प्रणम्य मातरं पश्चात् प्रणमेत् पितरं गुरुम् ॥

माता धरित्री जननी दयार्द्रहृदया शिवा ।
देवी त्रिभुवनश्रेष्ठा निर्दोषा सर्वदुःखहा ॥

आराधनीया परमा दया शान्ति क्षमा धृतिः ।

स्वाहा स्वधा च गौरी च पद्मा च विजया जया ।।
दुःख हन्त्रीति नामानि मातुरेवैकविंशतिम् ।
श्रृणुयाच्छ्रावयेन्मर्त्यः सर्वदुःखाद् विमुच्यते ।।
दुःखैर्महद्भिदूनोऽपि दृष्टवा मातरमीश्वरम् ।
यमानन्दं लभेन्मर्त्यः स किं वाचोपपद्यते ।।
इति ते कथितं विप्र मातृस्तोत्रं महागुणम् ।
पराशरमुखात्पूर्वमश्रौषं मातृसस्तवम् ।।
सेवित्वा पितरौ कश्चिद् व्याधः परमधर्मवित् ।
लेभे सर्वज्ञतां या तु साध्यते न तपस्विभिः ।।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन भक्तिः कार्या तु मातरि ।
पितर्यपीति चोक्तं वै पित्रा शक्तिसुतेन मे ।।

व्यासजी कहते हैं—पुत्र के लिये माता का स्थान पिता से भी बढ़कर है। क्योंकि वह उसे अपने गर्भ में धारण कर चुकी है तथा माता के द्वारा ही उसका भरण-पोषण भी हुआ है। अतः त्रिभुवन में माता के समान दूसरा कोई गुरु नहीं है। श्री गंगाजी के समान कोई तीर्थ नहीं है। भगवान विष्णु के समान कोई प्रभू नहीं है, शिवजी के समान कोई पूज्य नहीं है तथा माता के समान कोई गुरु नहीं है। एकादशी के सदृश कोई त्रिभुवन विख्यात व्रत नहीं है, उपवास के समान कोई तपस्या नहीं है तथा माता के समान कोई गुरु नहीं है। भार्या के समान कोई मित्र नहीं है। पुत्र के समान कोई प्रिय नहीं है, बहिन के समान अन्य कोई स्त्री नहीं है, तथा माता के समान कोई गुरू नहीं है। जामाता के समान कोई दान का पात्र नहीं है, कन्या दान के सदृश कोई दान नहीं है, भाई के समान बन्धु और माता के समान कोई गुरू नहीं है। देश वही श्रेष्ठ है, जिसके समीप गंगा हो, पत्तों में तुलसी का पत्ता श्रेष्ठ है, वर्णों में ब्राह्मण श्रेष्ठ है तथा गुरुजनों में माता ही सबसे श्रेष्ठ गुरु है। पुरुष पत्नी का आश्रय लेकर स्वयं ही पुत्र रूप में जन्म लेता है, इस दृष्टि से अपने पूर्व पिता का आश्रय भी माता ही होती है, इसलिए वही सबसे श्रेष्ठ गुरु है। धर्मज्ञ पुत्र माता और पिता दोनों को एक साथ देखने पर पहले माता को प्रणाम करके

पीछे पिता रूपी गुरू को प्रणाम करे। माता, धारित्री, जननी, दयार्द्र हृदया, शिवा, त्रिभुवनश्रेष्ठा, देवी, निर्दोषा, सर्व दुःखहा, परम आराधनीया, दया, शांति, क्षमा, धृति, स्वाहा, स्वधा, गौरी पद्मा, विजया, जया तथा दुःख हन्त्री-ये माता के ही इक्कीस नाम हैं। जो मनुष्य इन नामों को सुनता और सुनाता है, वह सब दुखों से मुक्त हो जाता है। बड़े-से-बड़े दुःखों से पीड़ित होने पर भी भगवती माता का दर्शन करके मनुष्य को जो आनन्द मिलता है, क्या उसे वाणी द्वारा व्यक्त किया जा सकता है ?

ब्रह्मन् ! यह मैंने तुम से परम गुणमय मातृ स्तोत्र का वर्णन किया है। यह मातृ स्त्रोत्र पूर्वकाल में मैंने अपने पिता श्री पराशरजी के मुख से सुना था। किसी धर्मज्ञ व्याध ने केवल माता-पिता की सेवा करके वह सर्वज्ञता प्राप्त करली, जो तपस्वियों को भी सुलभ नहीं है। इसलिये पूर्ण यत्न करके माता और पिता के चरणों में भक्ति करनी चाहिये। यह बात मेरे पिता शक्ति नन्दन पराशरजी ने मुझे बतायी थी।

ब्रहद्धर्म पुराण, पूर्व खण्ड अ० २—३३-४७
व्यास जाबालि संवाद

(नोट—प्रतिदिन इसका पाठ प्रीतिपूर्वक करना चाहिये।)

श्री राम

श्री कनकधारास्त्रोत्रम्

—(:)—

(इसके श्रद्धा-विश्वासपूर्वक पाठ-अनुष्ठान से ऋणमुक्ति और लक्ष्मी-प्राप्ति होती है। कहा जाता है कि आचार्य श्री शङ्कर ने इसका पाठ करके स्वर्णवर्षा करवायी थी। अतः धन की इच्छा करने वाले को सदा इसका पाठ करना चाहिये।)

अङ्गं हरेः पुलकभूषणमाश्रयन्ती,
भृङ्गाङ्गनेव मुकुलाभरणं तमालम्।
अङ्गीकृताखिलविभूतिरपाङ्गलीला,
माङ्गल्यदास्तु मम मङ्गलदेवतायाः ॥१॥

मुग्धा मुहुर्विदधती वदने मुरारेः,
प्रेमत्रपाप्रणिहितानि गतागतानि।
माला दृशोर्मधुकरीव महोत्पले या,
सा मे श्रियं दिशतु सागरसम्भवायाः ॥२॥

विश्वामरेन्द्रपदविभ्रमदानदक्ष-
मनान्दहेतुरधिकं मुरविद्विषोऽपि।
ईषन्निषीदतु मयि क्षणमीक्षणार्द्ध-
मिन्दीवरोदरसहोदरमिन्दिरायाः ॥३॥

आमीलिताक्षमधिगम्य मुदा मुकुन्द-
मानन्दकन्दमनिमेषमनङ्गतन्त्रम्

म्राकेकरस्थितकनीनिकपक्ष्मनेत्रं,
भूत्यै भवेन्मम भुजङ्गशयाङ्गनायाः ॥४॥

बाह्वन्तरे मधुजितः श्रितकौस्तुभे या,
हारावलीव हरिनीलमयी विभाति ।
कामप्रदा भगवतोऽपि कटाक्षमाला,
कल्याणमावहतु मे कमलालयायाः ॥५॥

कलाम्बुदालिललितोरसि कैटभारे-
र्धाराधरे स्फुरति या तडिदङ्गनेव ।
मातुः समस्तजगतां महनीयमूर्ति-
र्भद्राणि मे दिशतु भार्गवनन्दनायाः ॥६॥

प्राप्तं पदं प्रथमतः किल यत्प्रभावा-
न्माङ्गल्यभाजि मधुमाथिनि मन्मथेन ।
मय्यापतेत्तदिह मन्थरमीक्षणार्द्धं,
मन्दालसं च मकरालयकन्यकायाः ॥७॥

दद्याद् दयानुपवनो द्रविणाम्बुधारा,
मस्मिन्नकिंचनविहङ्गशिशौ विषण्णे ।
दुष्कर्मघर्ममपनीय चिराय दूरं,
नारायणप्रणयिनीनयनाम्बुवाहः ॥८॥

इष्टा विशिष्टमतयोऽपि यया दयार्द्र-
दृष्ट्या त्रिविष्टपपदं सुलभं लभन्ते ।
दृष्टिः प्रहृष्टकमलोदरदीप्ति रिष्टां,
पुष्टिं कृषीष्ट मम पुष्करविष्टरायाः ॥९॥

गीर्देवतेति गरुड़ध्वजसुन्दरीति,
शांकम्भरीति शशिशेखरवल्लभेति ।
सृष्टिस्थितिप्रलयकेलिषु संस्थितायै,
तस्यै नमस्त्रिभुवनैकगुरोस्तरुण्यै ॥१०॥

श्रुत्यैनमोऽस्तु शुभकर्मफलप्रसूत्यै,
रत्यै नमोऽस्तु रमणीयगुणार्णवायै ।
शक्त्यै नमोऽस्तु शतपत्रनिकेतनायै,
पुष्टयै नमोऽस्तु पुरुषोत्तमवल्लभायै ॥११॥

नमोऽस्तु नालीकनिभाननायै,
नमोऽस्तु दुग्धोदधिजन्मभूत्यै ।
नमोऽस्तु सोमामृतसोदरायै,
नमोऽस्तु नारायणवल्लभायै ॥१२॥

सम्पत्कराणि सकलेन्द्रियनन्दनानि,
साम्राज्यदानविभवानि सरोरुहाक्षि ।
त्वद्वन्दनानि दुरिताहरणोद्यतानि,
मामेव मातरनिशं कलयन्तु मान्ये ॥१३॥

यत्कटाक्षसमुपासताविधिः
सेवकस्य सकलार्थसम्पदः ।
सन्तनोति वचनाङ्गमानसै-
स्त्वां मुरारिहृदयेश्वरीं भजे ॥१४॥

सरसिजनिलये सरोजहस्ते,
धवलतमांशुकगन्धमाल्यशोभे ।

भगवति हरिवल्लभे मनोज्ञे,
त्रिभुवनभूतिकरि प्रसीद मह्यम ॥१५॥

दिग्घस्तिभिः कनककुम्भामुखावसृष्ट,
स्वर्वाहिनीविमलचारजलप्लुताङ्गीम् ।
प्रातर्नमामि जगतां जननीमशेष,
लोकाधिनाथगृहिणीममृताब्धिपुत्रीम् ॥१६॥

कमले कमलाक्षवल्लभे त्वं,
करुणापूरतरङ्गितैरपाङ्गः ।
अवलोकय मार्मकिचनानां,
प्रथमं पात्रमकृत्रिमं दयायाः ॥१७॥

स्तुवन्ति ये स्तुतिभिरमूभिरन्वहं,
त्रयीमयीं त्रिभुवनमातरं रमाम् ।
गुणाधिका गुरुतरभाग्यभागिनो,
भवन्ति ते भुवि बुधभाविताशयाः ।१८॥

(इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं कनकधारास्तोत्रं सम्पूर्णम)

श्री राम

श्री कनकधारा स्त्रोत का हिन्दी रूपान्तर

—(:)—

जैसे भ्रमरी अधखिले कुसुमों से अलंकृत तमालतरुका का आश्रय लेती है, उसी प्रकार जो श्रीहरि के रोमांच से सुशोभित श्री अंगों पर निरन्तर पड़ती रहती है तथा जिसमें सम्पूर्ण ऐश्वर्य का निवास है, वस सम्पूर्ण मंगलों को अधिष्टात्री देवी भगवती महालक्ष्मी की कटाक्षलीला मेरे लिए मंगलदायिनी हो ॥ १ ॥ जैसे भ्रमरी महान् कमलदल पर आती जाती या मंडराती है, उसी प्रकार जो मुरशत्रु श्रीहरि के मुखारविन्द की ओर बारम्बार प्रेमपूर्वक-जाती और लज्जा के कारण लौट आती है, वह समुद्र कन्या लक्ष्मी की मनोहर मुग्ध दृष्टिमाला मुझे धन-सम्पत्ति प्रदान करे ॥ २ ॥ जो सम्पूर्ण देवताओं के अधिपति इन्द्र के पद का वैभव-विलास देने में समर्थ है मुरारि श्री हरिको भी अधिकाधिक आनन्द प्रदान करने वाली है, तथा जो नीलकमल के भीतरी भाग के समान मनोहर जान पड़ती है। वह लक्ष्मीजी के अधखुले नयनों की दृष्टि क्षण भर के लिए मुझ पर भी थोड़ी सी अवश्य पड़े ॥ ३ ॥ शेषशायी भगवान् विष्णु की धर्मपत्नी श्री लक्ष्मीजी का वह नेत्र हमें ऐश्वर्य प्रदान करने वाला हो, जिसकी पुतली तथा बरौनियाँ अनङ्ग के वशीभूत (प्रेमपरवश) हो अधखुले किन्तु साथ ही निर्निमेष नयनों से देखने वाले आनन्दकंद श्रीमुकुन्द को अपने निकट पाकर कुछ तिरछी हो जाती है ॥४॥ जो भगवान् मधुसूदन के कौस्तुभमणिमण्डित वक्षःस्थल में इन्द्रनीलमयी हारा-

वलीसी सुशोभित होती है तथा उनके भी मन में काम (प्रेम) का संचार करने वाली हैं, वह कमलकुञ्जवासिनी कमला की कटाक्ष-माला मेरा कल्याण करे ॥ ५ ॥ जैसे मेघों की घटा में बिजली चमकती है, उसी प्रकार जो कैटभ-शत्रु श्री विष्णु के काली मेघमाला के समान श्यामसुन्दर वक्षःस्थल पर प्रकाशित होती है, जिन्होंने अपने आविर्भाव से भृगुवंश को आनन्दित किया है तथा जो समस्त लोकों की जननी हैं, उन भगवती लक्ष्मी की पूजनीया मूर्ति मुझे कल्याण प्रदान करे ॥ ६ ॥ समुद्र कन्या कमला की वह मन्द अलस, मन्थर और अर्धोन्मीलित दृष्टि, जिसके प्रभाव से कामदेव ने मंगलमय भगवान् मधुसूदन के हृदय में प्रथम वार स्थान प्राप्त किया था, यहाँ मुझ पर पड़े ॥ ७ ॥ भगवान् नारायण की प्रेमसी लक्ष्मी का नेत्ररूपी मेघ दयारूपी अनुकूल पवन से प्रेरित हो दुष्कर्मरूपी धाम को चिरकाल के लिए दूर हटा कर विषाद में पड़े हुए मुझ दीनरूपी चातकपोत पर धनरूपी जलधारा की वृष्टि करे ॥ ८ ॥ विशिष्ट बुद्धि वाले मनुष्य जिनके प्रीतिपात्र होकर उनकी दया-दृष्टि के प्रभाव से स्वर्गपद को सहज ही प्राप्त कर लेते हैं, उन्हीं पद्मासना पद्मा की वह विकसित कमल-गर्भ के समान कान्तिमती दृष्टि मुझे मनोवांछित पुष्टि प्रदान करे ॥ ९ ॥ जो सृष्टि-लीला के समय वाग्देवता (ब्रह्म-शक्ति) के रूप में स्थित होती हैं, पालन-लीला करने समय भगवान् गरुड़ध्वज की सुन्दरी पत्नी लक्ष्मी (या वैष्णवी शक्ति) के रुप में विराजमान होती हैं तथा प्रलय-लीला के काल में शाकम्भरी (भगवती दुर्गा) अथवा चन्द्रशेखर-वल्लभा पार्वती (रुद्र-शक्ति) के रूप में अवस्थित होती हैं, उन त्रिभुवन के एक मात्र गुरु भगवान् नारायण की नित्ययौवना प्रेयसी श्रीलक्ष्मीजी को नमस्कार है ॥ १० ॥ मातः ! शुभ कर्मों का फल देने वाली श्रुति के रूप में आपको प्रणाम है , रमणीय गुणों की सिन्धुरूप रति के रूप में आपको नमस्कार है। कमलवन में निवास करने वाली शक्ती-स्वरूपा लक्ष्मी को नमस्कार है तथा पुरुषोत्तम प्रिया पुष्टि को नमस्कार हैं ॥ ११ ॥ कमलवदना

कमला को नमस्कार है। क्षीरसिन्धुसम्भूता श्रीदेवी को नमस्कार है। चन्द्रमा और सुधा की सगी बहिन को नमस्कार है॥ १२ ॥ कमलसदृश नेत्रों वाली माननीय माँ ! आपके चरणों में की हुई वन्दना सम्पत्ति प्रदान करने वाली, सम्पूर्ण इन्द्रियों को आनन्द देने वाली, साम्राज्य देने में समर्थ और सारे पापों को हर लेने के लिए सर्वथा उद्यत है। वह मुझे ही अवलम्बन करे। (मुझे ही आपकी चरणवन्दना का शुभ अवसर सदा प्राप्त होता रहे)॥ १३ ॥ जिनके कृपा-कटाक्ष के लिए की हुई उपासना उपासक के लिए सम्पूर्ण मनोरथों और सम्पत्तियों का विस्तार करती है, श्रीहरि की हृदयेश्वरी उन्हीं आप लक्ष्मीदेवी का मैं मन, वाणी और शरीर से भजन करता हूँ॥१४॥ भगवति हरिप्रिये ! तुम कमलवन में निवास करने वाली हो, तुम्हारे हाथों में लीला-कमल सुशोभित है। तुम अत्यन्त उज्ज्वल वस्त्र, गन्ध और माला आदि से शोभा पा रही हो। तुम्हारी झाँकी बड़ी मनोरम है। त्रिभुवन का ऐश्वर्य प्रदान करने वाली देवि ! मुझ पर प्रसन्न हो जाओ॥१५॥ दिग्गजों द्वारा सुवर्ण-कलश के मुख से गिराये गये आकाशगङ्गा के निर्मल एवं मनोहर जल से जिनके श्रीअंगों का अभिषेक (स्नान-कार्य) सम्पादित होता है, सम्पूर्ण लोकों के अधीश्वर भगवान् विष्णु की गृहिणी और क्षीर सागर की पुत्री उन जगज्जननीं लक्ष्मी को मैं प्रातःकाल प्रणाम करता हूं॥१६॥ कमलनयन केशव की कमनीय कामिनी कमले ! मैं अकिंचन (दीनहीन) मनुष्यों में अग्रगण्य हूँ, अतएव तुम्हारी कृपा का स्वाभाविक पात्र हूँ। तुम उमड़ती हुई करुणा की बाढ़ की तरल-तरंगों के समान कटाक्षों द्वारा मेरी ओर देखो॥१७॥ जो लोग इन स्तुतियों द्वारा प्रतिदिन वेदत्रयीस्वरूपा त्रिभुवन-जननी भगवती लक्ष्मी की स्तुति करते हैं, वे इस भूतल पर महान् गुणवान् और अत्यन्त सौभाग्यशाली होते हैं तथा विद्वान् पुरुष भी उनके मनोभाव को जानने के लिए उत्सुक रहते हैं॥१८॥ (कनकधारास्तोत्र समाप्त)

[संकलन]

॥ ओ३म् ॥

नम्र निवेदन

समय-समय पर "कल्याण", गीता-सन्देश (बम्बई), गीता-सन्देश-त्रैमासिक (ऋषिकेस) ऋर्प-जीवन, परमार्थ, शंकराचार्य उपदेशामृत आदि पत्रिकाओं में मेरे लेख प्रकाशित होते रहते हैं। कुछ सज्जन पुरुषों के आग्रह से उन्हीं लेखों का संग्रह करके यह पुस्तक प्रकाशित की गई है। इसमें सभी प्रकार के व्यक्तियों के लिये आत्मोन्नति का मार्ग दर्शाया गया है। बातें अत्यन्त ही सुगम दी गई हैं जिससे कम पढ़े लिखे पुरुष और स्त्री-बच्चे भी समझ सकें।

कई वर्षों के सत्संग से जो कुछ भी सन्त-महात्माओं से सुनने का सौभाग्य मिला तथा सद्ग्रन्थों के अवलोकन करने पर जो कुछ सार बातें समझ में आई वही बातें इसमें दी गई हैं। कोई मेरे द्वारा नई रचना अथवा नया आविष्कार नहीं है। फिर भी मुझसे अनेक त्रुटियाँ भी हो गई होंगी जिनके लिये विज्ञजनों से क्षमा प्रार्थी हूँ।

इस पुस्तक के सभी लेख छोटे-छोटे होते हुए भी सारगर्भित हैं। प्रत्येक पंक्ति मननीय है।

मैं स्व० नन्दकिशोरदास, एम० ए०, एल०-एल० बी० (प्रयाग विश्वविद्यालय) को नहीं भूलूंगा जिनके संरक्षण में मुझमें धार्मिकता का संचार हुआ। आप श्रीगीता तथा श्रीरामचरितमानस के उद्भट विद्वान् थे। आपकी प्रेरणा से ही मुझे श्रीगीताजी में श्रद्धा उत्पन्न हुई। मैं जिस स्कूल में पढ़ता था उस स्कूल के आप प्रधानाध्यापक थे। अतः वे मेरे शिक्षा-गुरु थे। नमः परम गुरुभ्यः।

आप संस्कृत, हिन्दी एवं संस्कृत के दिग्गज महारथी एवं प्रकाण्ड विद्वान् थे। वक्तृत्व एवं लेखनी शक्ति बड़ी अच्छी थी। Simple living and high thinking (सादा जीवन और उच्च विचार) के तो आप प्रत्यक्ष मूर्ति ही थे। सदाचार, सादगी, सत्य. ईमानदारी और अनुशासन इनमें कूट-कूट कर भरे हुए थे। प्रसन्नता तो आपकी जन्मजात सम्पत्ति थी। सब समय प्रसन्नचित्त रहा करते थे।

विद्यालय के विद्यार्थियों से आप बड़ा स्नेह रखते थे। क्रोध कभी नहीं करते थे पर इनका अनुशासन विद्यार्थियों पर आदर्श था। ये सभी छात्रों से घनिष्ठ सम्पर्क रखते थे। गीता-रामायण एवं दुर्गासप्तशती का पाठ स्वयं करते थे और दूसरों को भी करने की प्रेरणा देते थे। ईश्वर की प्रार्थना में बड़ा विश्वास रखते थे।

वास्तव में आप एक आदर्श व्यक्ति थे। आपका स्वभाव अत्यन्त ही सरल था। वृद्धों में वृद्ध तथा युवकों में युवक थे। अभिमान तो आप में था ही नहीं।

प्रयाग के कायस्थ पाठशाला में आप बहुत दिनों तक प्राध्यापक रहे। पश्चात् आप बिहार प्रान्त के भागलपुर जिलान्तर्गत निर्मली उच्च विद्यालय के प्राचार्य पद पर नियुक्त किये गये। आपके समय में (१९३६-१९३८) विद्यालय की बड़ी उन्नति हुई।

डा० गंगानाथ झा, डा० अमरनाथ झा, श्री आदित्यनाथ झा, डा० उमेश मिश्र श्री सिद्धिनाथ मिश्र, डा० दक्षिणरञ्जन भट्टाचार्य (प्रोफेसर प्रयाग विश्वविद्यालय) आदि विद्वानों से एवं डा० सच्चिदानन्द सिन्हा (बिहार) से भी आपका घनिष्ठ सम्बन्ध था।

१९३७ ई० में आपकी धर्मपत्नी श्रीमती योगेश्वरी देवी का देहान्त हो गया। इसके बाद १९३९ ई० के ज्येष्ठ कृष्ण दशमी शनिवार (१७ मई) को पाटलिपुत्र के पवित्र गंगाजी के तट पर आप भी अपनी माता को बिलखती छोड़कर इस असार-संसार से चल बसे। फूल खिलने भी नहीं पाया कि माली ने उसे तोड़ लिया। किसका वश चलता है नियति के आगे। देहान्त के समय आपकी उम्र केवल ३८ वर्ष की ही थी। दो हजार रुपये की पुस्तकें इनकी आलमारियों में मिलीं एवं कई हस्तलिखित पुस्तकें भी जो प्रकाशित भी न हो पायीं—सब इनके बाद बर्बाद हो गयीं। आपके जीवन से मुझे विशेष प्रेरणा मिली थीं। भगवान् उन्हें शान्ति प्रदान करें।

आशा है यदि पाठकों को यह पुस्तक पसन्द आयगी तो शीघ्र ही ऐसी पुस्तकें और भी प्रकाशित कर दी जायगी।

विनीत

कृष्णानन्द।

श्रीः

श्रीकृष्ण चरितामृत

आज मेरे मन में टेढ़े कान्ह की टेढ़ी लीलायें लिखने की लालसा जाग्रत हो उठी। किन्तु है तो टेढ़ी खीर ही। नटवरलाल का नाट्य इतना अटपट, खटपट और चटपट है कि इसका रहस्य समझ में नहीं आता। बड़े-बड़े दिग्गज विद्वानों के दांत खट्टे हो जाते हैं। जब वे एक ही बालकृष्ण को कहीं तो नाचते, कहीं वंशी बजाते, कहीं व्रजरज खाते, कहीं माखन चुराते और कुछ ही वर्ष बाद गीता सुनाते देखते हैं तो सन्देह में पड़ जाते हैं कि कृष्ण एक है या अनेक।

एक ओर तो गीता में अहिंसा का उपदेश और दूसरी ओर अपने मामा का भी वध, स्वयं तो मन्मथ का भी मन मोह लेवें और--उपदेश दें अनासक्ति-योग का। मोहन होकर निर्मोही कैसा ! बड़े-बड़े साधु सन्त जिसकी मोहन--मुस्कान पर ही अपने तन-मन-धन सर्वस्व निछावर कर देते हैं। और बिना मोल के ही उनके चेरे बन जाते हैं उनकी लीला का रहस्योद्घाटन कर सकता ही कौन है ! फिर भी अपनी लेखनी को पावन करने के लिये आइये कुछ आनन्द ले ही लें।

विषयानन्द, विद्यानन्द, ब्रह्मानन्द से भी जो विलक्षण आनन्द परमानन्द है वही भगवान् श्रीकृष्ण हैं, क्योंकि भागवतों के ऐसे वचन हैं :...

अहो भाग्यमहोभाग्यं नन्दगोपव्रजौकसाम्।
यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनम्॥
वसुदेवसुतं देवं कंस चाणूर मर्दनम्।
देवकी परमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्॥

मूकं करोति वाचालं पंगुं लंघयते गिरिम् ।
यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्द माधवम् ।।

जैसे चन्द्रोदय होने पर तारे और सूर्योदय होने पर चन्द्रमा छिप जाते हैं, वैसे ही परमानन्द प्राप्त कर लेने पर विषयानन्द और ब्रह्मानन्द भी छिप जाते हैं तभी तो राजा दशरथ तथा महाराजा जनक के लिये श्रीमद् गोस्वामी जी ने लिखा है :

(१) दशरथ पुत्र जन्म सुनि काना, मानहु ब्रह्मानन्द समाना ।
जाकर नाम सुनत सुभ होई, मोरे गृह आवा प्रभु सोई ।।
परमानन्द पूरि मन राजा, कहा बुलाय बजावहु बाजा ।
(२) इनहि विलोकत अतिअनुरागा, बरबस ब्रह्म सुखहिमतुत्यागा ।

इस परमानन्द की परम पवित्र लीला को समझने के लिये घोर तपस्या की आवश्यकता है । जो श्रद्धा-विश्वास से रहित हैं और जिन्होंने प्रणिपात, परिप्रश्न और सेवा द्वारा श्रीगुरु-पद-रज-मृदु-मंजुल अंजुल अंजन से अपने हृदय के विमल विलोचन प्रकट नहीं कर लिये हैं, वे इस लीला को सुनकर चक्कर में पड़ जाते हैं । जो रसिक नहीं हैं वे रसिकराज की रसमयी लीला का रसास्वादन नहीं कर सकते ।

"रसिकराज गिरधर की चालें बिना रसिक कोई जानि सकै ना" जिनको भगवान् ने "बुद्धियोग" प्रदान कर रखा है अथवा जिनका अज्ञानान्धकार "भास्वताज्ञानदीपेन" नष्ट हो गया है वे ही भाग्यवान् पुरुष भगवल्लीला के मर्म को समझ सकते हैं; और जो इस ब्रजचन्द की पवित्र ब्रजलीला का मर्म जान लेता है वह अपना सर्वस्व निछावर किये बिना नहीं रह सकता । तभी तो रसखान की यह दशा है :

या लकुटी और कामरिया पर राज तिहूंपुर को तजि डारौं ।
आठहु सिद्धि नवो निधि को सुख नन्द की गाय चराय बिसारौं ।।
"रसखान" सदा इन नैनन सों ब्रज के वन बाग तड़ाग निहारौं
कोटिन हू कलधौत के धाम करील की कुंजन ऊपर वारौं ।।

वास्तव में ब्रजभूषण की ब्रजलीला केवल मनोरंजन के लिए नहीं हुई बल्कि यह विशुद्ध प्रेम की लीला थी, जिससे सारे संसार का कल्याण हुआ, होता है और होगा। इस लीला में अव्यक्त और परम पवित्र प्रेम ने ही व्यक्त रूप धारण कर लिया था। यह एक पावन लीला है, जिससे श्रवण-मनन करने से मनुष्य के हृदय की कलुषित-वासना का नाश हो जाता है, और वह ब्रजनन्दन, ब्रजचन्द, ब्रजभूषण, ब्रजजीवन, ब्रजनाथ, ब्रजकिशोर का परम प्रेमी हो जाता है।

जो लोग श्रीकृष्ण-चरित्र पर नाना प्रकार के दोषारोपण करते हैं, वे भूल जाते हैं कि भगवान प्रेममय हैं। इसी प्रेम के द्वारा वे परम स्वतन्त्र महापुरुषों को भी अपने प्रेमपाश में बांध लेते हैं। उदाहरणार्थ श्री मधुसूदन स्वामी को लीजिये। वे स्वयं अपनी हृदय की वेदना का वर्णन करते हैं :

अद्वैतवीथीपथिकैरुपास्याः
स्वाराज्यसिंहासनलब्धदीक्षाः।
शठेन केनापि वयं हठेन
वशीकृता गोपवधूविटेन॥

अहो! अद्वैत मार्ग से स्वराज्य प्राप्त करने पर भी यह शठ गोपी-वल्लभ महामनीषियों को भी अपना दास बना लेता है। इसके रूप में कोई ऐसा जादू भरा है कि देखते ही विचित्र दशा हो जाती है।

"होत अचेत सचेत लखि, होत सचेत अचेत" तभी तो एक संत महोदय कह रहे हैं।

रे चेतः कथयामि ते हितमिदं वृन्दावने चारयन
वृन्दंकोऽपि गवां नवाम्बुदनिभोबन्धुर्न कार्यस्त्वया।
सौन्दर्यामृत मुद्गिरद्भिरभित सम्मोह्यमन्दस्मितै-
रेषत्वां तव वल्लभांश्च विषयानाशु क्षयं नेष्यति॥

"रे मन ! सावधान हो जा। तू वृन्दावन में गाय चराने वाले, नवीन नील-जलधरके समान कान्ति वाले किसी पुरुष को अपना बन्धु मत बना लेना वह सौन्दर्यामृत बरसाने वाली अपनी मन्द मुस्कान से तुझे मुग्ध कर लेगा। यही नहीं, तेरे प्रिय विषयों को भी नष्ट कर डालेगा।

लीलाशुकका भी यही अनुभव है। वे तो भीमरथी के रास्ते से किसी को गुजरने से भी मना करते हैं।

सुनिये उन्हीं के शब्दों में :

मा यात पान्थाः पथि भीमरथ्या
दिगम्बरः कोऽपि तमालनीलः।
विन्यस्त हस्तोऽपि नितम्ब विम्वे
धूतः समाकर्षति चित्तवित्तम् ॥

"अरे पथिकों ! भीमरथीको इस भयावनी गलीसे मत जाना। वहाँ तो अपने नितम्ब विम्वपर हाथ रखे हुए जो तमाल-वर्णका बालक (विट्ठल) खड़ा है, वह केवल देखने में ही अवधूत है। वास्तव में तो वह पाससे गुजरने वाले पथिक का चित्त-वित्त चुराये विना नहीं रहता।"

यदि कहो कि श्री कृष्ण के रूप में ही कोई जादू है तो ऐसी बात नहीं, उनके कर-कमल में रहने वाली उनकी वंशी में भी ऐसी जादू भरी है, जिससे दूर-दूर के प्राणी भी सम्मोहित होकर अपनी सुध-बुध खो बैठते हैं। बड़े-बड़े योगी की समाधि भी टूटे विना नहीं रहती। इसके मधुरातिमधुर तान के आगे अमृत फीका हो जाता है और धीरों की धीरता छूट जाती है। इसको सुनकर चेतन भी अचेतन और अचेतन भी चेतन हो जाते हैं तभी तो एक गोपी कह रही है :—

मुरहर ! रन्धनसमये मा कुरु मुरली रवं मधुरम्।
नीरसमेधोरसतां कृशानुरप्येति कृशतरताम् ॥

हे मुरारे ! जरा मेरी बात मानकर कृपया रसोई बनाने के स
अपनी मुरली की मधुर तान न छेड़ा करो क्योंकि इसको सुनकर सूखा ईं
भी सरस होकर चूने लगता है। फलतः सबको जलाकर कृश कर देने वा
आग स्वयं ही अत्यन्त कृश होकर बुझ जाती है।

इसीसे सिद्ध होता है कि भगवान् की सभी लीलाएं अलौकिक आन
से भरी हैं। बड़े बड़े विद्वान् भी इसका रहस्य नहीं जान पाते, फिर पाम
को तो बात ही क्या ! निरीह होकर वे प्रवृत्त हैं, अज होकर भी जन्म ले
हैं, काल का भी काल होकर रण से भाग जाते हैं, आत्माराम होकर
गोपियों के साथ रमण करते हैं। यह सुनकर कौन विद्वान् भी चक्कर में न
पड़ जाता। स्वयं वेद-व्यास भी अपने को इस लीला का रहस्य जानने में अप
को असमर्थ पाते हैं। हम तो शही प्रार्थना करें :

कृष्ण त्वदीयपदपंकजपञ्जरान्ते
अद्यैव मे विशतु मानसराजहंसः।
प्राणप्रयाणसमये कफवातपित्तैः
कण्ठावरोधनविधौ स्मरणं कुतस्ते॥

हे कृष्ण ! हमारा यह मानस-राजहंस शीघ्रातिशीघ्र आपके पादप
में विहार करने लगे।

एक समय बाल कृष्ण धरती पर लेट रहे थे। अचानक उनकी इच्छ
माँ की गोद में बैठने की हुई। वे लगे जोर-जोर से रोने किन्तु माता यशो
अपने गृह-कार्य में इतनी संलग्न थी कि अपने शिशु के रोने की ओर उसक
ध्यान ही नहीं गया। ज्यों-ज्यों माता गोदी में लेने के लिये देरी कर रही है
त्यों ही त्यों भगवान और जोर से रोने लगे।

इतने में देवर्षि नारद भूलोक का पर्यटन करते हुए उसी स्थान प
आ गये। बालक कृष्ण को गोदी के लिये मचलते देख कर उनसे नहीं रह
गया वे कहने लगे :—

किं ब्रूमस्त्वां यसोदे कति कति सुकृत क्षेत्र वृन्दानि पूर्वम् ।
गत्वा कीदृग्विधानैः कति कति सुकृतान्यर्जितानि त्वयैव ॥
नो शक्रो न स्वयम्भूर्नच मदनरिपुर्यस्य लेभे प्रसादम् ।
तत्पूर्णं ब्रह्म भूमौ विलुठति विलपन् क्रोडमारोढुकामः ॥

यशोदे ! तुझे क्या कहें, धन्य है तेरा भाग्य। न जाने तूने पूर्व जन्म में तीर्थों में जाकर कितने महान् सुकृत किये हैं, जिसके प्रसाद को इन्द्र, ब्रह्मा और शंकरजी भी नहीं प्राप्त कर सकते वही पूर्ण ब्रह्म तेरी गोदी में चढ़ने के लिये पृथ्वी पर पड़ा छटपटा रहा है।

एक दिन की बात है माता यशोदा ने विचार किया कि बच्चा पढ़ता नहीं है, नटखट होता जा रहा है। इसको पढ़ाने में लगाना ही ठीक है। अतः वे बोली :—

कृष्णत्वं पठ किं पठामि ननु रे शास्त्रं किमु ज्ञायते ।
तत्त्वं कस्य विभोःसकस्त्रिभुवनाधीशश्च तेनापि किम् ॥
ज्ञानं भक्तिरथो विरक्तिरनया किं मुक्तिरेवास्तुते ।
दध्यादीनि भजामि मातुरुदितं वाक्यं हरिः पातुनः ॥

"कृष्ण ! तू पढ़ा कर"

कृष्ण ने कहा—क्या पढ़ूं ?

माता ने कहा—"शास्त्र"।

कृष्ण ने पूछा—"उससे क्या होने वाला है !"

माता बोली—"तत्त्वज्ञान होगा"।

कृष्ण ने पूछा—"किस तत्त्व का ज्ञान"।

माता बोली—"व्यापक ब्रह्म के तत्त्व का"।

कृष्ण ने पूछा—"वह ब्रह्म कौन है ?"

माता बोली—"वह तीनों लोकों का स्वामी है।"

कृष्ण ने कहा—"उसको जानकर क्या होगा ?"

माता बोली—"ज्ञान, भक्ति और वैराग्य।"

कृष्ण ने पूछा—"इससे क्या लाभ होगा ?

माता बोली—"तेरी मुक्ति हो जायगी।"

इस पर कृष्ण ने कहा—"मुझे मुक्ति नहीं चाहिये, मैं तो दही-माखन ही चाहता हूँ। यह मुक्ति तुमको ही मिले। इस पर

माता यशोदा बोली—"कन्हैया! यदि दूध, दही और नवनीत से ही तुझे प्रेम है तो अपने घर में कमी किस वस्तु की है। नौ लाख गायें दूध दे रही हैं। अतः

दुग्धं घृतं दधि मदीय गृहेऽपि कृष्ण।
संविद्यते वहुतरं तव तृप्तयेऽलम्॥
तद्भुङ्क्ष्व भोजय सखीन् न निरोधयामि।
त्वं वत्स चौर्यनिरतिं न जहासि कस्मात्॥

हे कृष्ण! दूध, दही और माखन अपने घर में वहुतेरा है। जितने में तेरी तृप्ती हो जाय उतने तो हैं ही। तू स्वयं खाले और अपने बाल-सखाओं को भी खिला, मैं मना नहीं करती पर तू चोरी की आदत क्यों नहीं छोड़ता।"

माता यशोदा यह नहीं जानती थीं कि यह एक सर्वप्रसिद्ध चोर है। चोरी करना तो इसने अपना पेशा ही बना रखा है। किसी कवि ने इस चोरी-लीला से मुग्ध होकर कितना सुन्दर लिखा है:—

व्रजे प्रसिद्धं नवनीतचौरं गोपाङ्गनानाञ्च दुकूल चौरम्।
अनेक जन्मार्जित पापचौरं चौराग्रगण्यं पुरुषं नमामि॥१॥
पादाश्रितानां च समस्तचौरं श्री राधिकाया हृदयस्य चौरम्।
नीलाम्वुजश्यामलकान्तिचौरं चौराग्रगण्यं पुरुषं नमामि॥२॥

(अर्थ सरल है)

वाह रे चोर भगवान् ।

एक और सन्त का उद्‌गार सुनिये :—

प्रणतदुरितचौरः पूतनाप्राणचौरः
वलयवसनचौरो बालगोपाङ्गनानाम् ।
नयनहृदयचोरः पश्यता सज्जनानाम्
अपहरति मनो मे कोऽप्ययं कृष्ण चौरः ।।

भक्तों के पापों को, पूतना के प्राणों को, गोपियों के आभूषण और वस्त्रों को तथा अपना दर्शन करने वाले सज्जनों के नेत्रों और मनों को चुराने वाला कृष्ण नामक चोर मेरे मन को चुराये लेता है ।"

एक दिन की बात है, माखन चोर किसी गोपी के घर माखन चुराने गये । प्रात;काल का समय था, सभी ग्वाल-वालों को भी साथ ले गये थे । उस समय गोपी घर में नहीं थी। अच्छा सुअवसर पाकर सभी घर में घुस गये और चुपके से हाँडी उतार कर माखन निकालने लगे । इतने में गोपी आ गई और बोली :

'कस्त्वम" तू कौन है ?

भगवान् ने कहा—कृष्ण मवेहिमाम्— 'मैं कृष्ण हूँ"

गोपी ने पूछा—किमिहते—"यहाँ क्यों आया है !"

भगवान् ने उत्तर दिया—मन्मन्दिराशङ्कया—"अपना घर समझ कर" ।

गोपी बोली—युक्त तन्नवनीत भाजनपुटे न्यस्तः किमर्थं करः—ठीक है । परन्तु माखन के पात्र में हाथ क्यों डाला ?"

भगवान् झट से बोल उठे—कत तत्र पिपीलिकापनयनल्—इसमें चींटी पड़ गई थी, उसे निकाल रहा था ।

गोपी ने पूछा—सुप्ताः किमुद्बोधिताः—"सोये हुये बालकों को क्यों जगाया ।"

भगवान् झट से बोले—त्राला: वत्संगति विवेक्तुमिति सज्जल्पन् हरिः पातुनः। आज बछड़े किस ओर चरने के लिये जायेंगे, यह पूछने के लिये।

इस तरह के वकालत करने वाले के सामने एक ग्रामीण गोपी की क्या चल सकती है, बेचारी चुप हो गई।

एक और सुनिये—एक दिन की बात है कि भगवान् ने एक मिट्टी की डली मुँह में डाल ली। भागवत्कार लिखते हैं :

एकदा क्रीड मानास्ते रामाद्या गोपबालकाः।
कृष्णो मृदं भक्षितवानिति मात्रे न्यवेदयन् ॥
एक समय संग खेलत-खेलत गोप सखा समुदाई।
दाऊ सहित गोप बालन ने माँ पै खबर जनाई ॥
यशोदा तेरे लाला ने मिट्टी खाई ॥

ग्वालबालों तथा बलदाऊजी ने माँ से कहा :—

कृष्णेनाम्ब ! गतेनरन्तुमधुना मृद् भक्षिता स्वेच्छया। मैया ! आज कृष्ण ने खेलते समय अपनी इच्छा से मिट्टी खा ली। माता ने पूछा—सत्यं कृष्ण क एवमाह मुसली :—

"क्यों रे यह बात सच है !"
मिथ्याम्ब। पश्याननम्।

भगवान् बोले—'मैया यह बात सरासर झूँठ है, मेरा मुँह देखले।' माता ने पूछा—

वदन्ति तावका ह्येते कुमारास्तेऽग्रजोऽप्ययम्—"ये सभी तुम्हारे साथी कह रहे हैं और बलदाऊ भी कहता है।" (भा०) भगवान् ने कहा—नाहं भक्षितवानम्ब

माता ! मैंने मिट्टी नहीं खाई है।
माता ने पूछा—तो ये कहते क्यों हैं !

भगवान् बोले—सर्वे मिथ्याभि शंसिनः—'ये सभी झूठ बोलते हैं।
इस पर एक कवि की उक्ति सुनिये :—

सखा—तेरे लाला ने ब्रज-रज खाई यशोदा सुन माई।
अद्भुद् खेल सखन सँग खेल्यो,
छोटो सो माटी को ढेलो,
तुरत श्याम ने मुख में मेल्यो,
(याने) गटत गटत गटकाई यशोदा० ॥१॥

(मैया) दूध, दही को कवहुँ न नाटी,
क्यों लाला तैंने खाई माटी,
यशुदा समुझा रही ले सांटी
(याने) नेकदया नही आई यशोदा सुनु माई ॥२॥

(मैया के हाथ में छड़ी देखकर डरते हुये श्यामसुन्दर बोले।)
मारे मति मैया वचन भरवाय ले।
वचन भरवाय ले सौगन्ध कर वायले ॥मारे॥१॥

गंगा की खवाय ले चाहे यनुना की उवायले।
क्षीर सागर में मैया ठाढ़ो करवाय ले ॥ मारे ॥२॥

गैयन की खवायले चाहे बछड़न की खवायले।
नन्दबाबा के आगे ठाढ़ो करवायले ॥ मारे ॥३॥

गोपियन की खवायले चाहे ग्वालन की खवायले।
दाऊ भैया के माथे हाथ धरवायले ॥ मारे ॥४॥

मुख के माहि अंगुली मेली,
निकल पड़ी माटी की ढेली
भीर भई सखियन की भेली
(याने) देखे लोग लुगाई ॥यशोदा सुनु॥
मोहन को मुखड़ो खुलवायो।
तीन लोक वा मे दरसायो,

तब विश्वास यशोदा को आयो।
पूरन ब्रह्म कन्हाई, यशोदा सुनु ॥४॥

ऐसा स्वाद नहीं माखन में,
नहिं मिसरी, मेवा, दाखन, में।
जो रस है व्रज-रज चाखन में
(याने) मुक्ति की मुक्ति कराई, यशोदा सुनु० ॥५॥

या रज को सुर नर मुनि तरसै,
बड़भागी जन नित उठि परसै,
जिनकी लगन लगी रहे हरि से,
घासी राम कथ गाई, यशोदा सुमु माई ॥६॥

एक दिन श्यामसुन्दर को अपने घर में ही माखन खाने की इच्छा हुई। माँ को घर में नहीं देखकर अपने सूने घर में घुसे। उनका प्रतिबिम्ब मणि-स्तम्भ में पड़ रहा था, उस प्रतिबिम्ब—को देखकर वे भयभीत से हो गये। काँपते हुये बोले—

भ्रातर्मावद मातरंसम समो भागस्तवापीहितो।
भुड-क्षेत्यालपतो हरेः कलवचो मात्रा रहः श्रूयते ॥

अरे भैया! मेरी माता से जाकर मत कहियो, तुमको भी अपने बराबर भाग दूँगा, ले खा। माता यशोदा अलग से सब बातें सुन रही थी, इतने में भगवान् की दृष्टि माता पर पड़ी, तुरन्त उन्होंने बात बदलते हुए अपनी माँ से कहा :—

मातःएषं नवनीत मिदं त्वदीयं लोभेन चोरयितुं मद्यगृहंप्रविष्टः।
मद्वारणं न मनुतेमयि रोषभाजि रोषं तनोतिनहिमें नवनीतलोभः ॥

देख माता! यह कौन है, माखन के लोभ से तुम्हारे घर में घुस गया है। मेरे मना करने पर भी यह मानता नहीं। मैं उस पर जब क्रोध करता हूँ तब यह भी क्रोध करता है।

माता मैं सच कहता हूँ मुझे जरा भी माखन का लोभ नहीं है। बालक की तुतली बोली सुनकर माता गद्‌गद् हो गई।

एक दिन की बात सुनिये, माता यशोदा घर से बाहर गई हुई थी इतने में भगवान् माखन-चोरी के लिये अपने घर में घुसे। ज्योंही मटका में हाथ रक्खा दैवात् माता पहुंच गई, लाला को न देखकर कहने लगी :

कृष्ण क्वासि करोषि किं पितरिति श्रुत्वैव मातुर्वचः।
साशङ्कं नवनीत चौर्यविरतो विश्रम्य तामब्रवीत्॥
मातः कंकणपद्मरागमहसा पणिर्ममातप्यते।
तेनायं नवनीत भाण्डविवरे विन्यस्य निर्वापितः॥

कन्हैया ! ओ कन्हैया ! अरे बाप ! कहाँ चला गया क्या कर रहा है। माता की बात सुनते ही श्री कृष्ण भयभीत होकर माखन चोरी से अलग हो गये और बोले...मैया यह जो मेरे कङ्कण में पद्मराग जड़ा हुआ है, इसकी लपट से मेरा हाथ जल रहा था। इसी से मैंने माखन के मटके में हाथ डाल दिया कि शीतल हो जाय। लाला की तोतली वाणी को सुनकर माता का वात्सल्य भाव उमड़ आया और वे लगी उनको गोद में लेकर प्यार से चूमने।

एक दिन भगवान् ने अदभुत लीला की। प्रातःकाल का समय था, सभी दासियाँ अपने अपने काम में लगी थीं; श्री नन्दरानीजी स्वयं अपने हाथों से अपने कन्हैया के लिये दही बिलो रही थी। दही बिलोने के साथ साथ ही गाने में मस्त थीं। शरीर से दधि-मन्थन रूप सेवा हो रही है, हृदय में सतत् स्मरण की धारा बह रही है और वाणी से बाल चरित का गान मधुराति-मधुर-स्वर में कर रही है। अर्थात् माता के तन-मन-वचन तीनों सेवा में लगे हैं।

इतने में लाला की आँखें खुल गई, वे भूख से व्याकुल होकर जोर-जोर से रोने लगे, माता इतनी संलग्न थी कि लाला का रोदन नहीं सुन

सकीं। इतने में भगवान स्वयं रोते हुए माँ के पास पहुँच गये। उन्होंने माँ के हाथ की मथानी पकड़ लीं और मथने से रोक दिया। माता भगवान को गोदी में लेकर दूध पिलाने लगी। इसी समय अंगीठी पर रखे दूध में उफान आ गया। यह देख माता ने लाला को धरती पर रख दिया और आप दौड़ गई दूध उतारने के लिये; यह देखकर श्री कृष्ण को क्रोध आ गया, उनके लाल-लाल ओठ फड़कने लगे। उन्होंने क्या किया सो सुनिये :

> सञ्जात कोपः स्फुरितारुणाधरं
> संदश्य दद्भिर्दधिमन्थभाजनम्।
> भित्त्वा मृषाश्रुर्दृषदश्मना रहो
> जघास हैयङ्गवमन्तरं गतः ॥भा०॥

उनको क्रोध तो हो ही गया था, मारे क्रोध के वे विसूरने लगे और एक पत्थर उठाकर दही के मटके के ऊपर दे मारा। मटका तो चूर-चूर हो गया, दही भी इधर-उधर फैल गया। आँखों में नकली आँसू बहाते हुए वे दूसरे घर में चले गये और अकेले बासी माखन खाने लगे। इतने में औटे दूध को उतारकर यशोदाजी आ गई। दही का मटका फूटा हुआ देखकर वे तुरन्त ताड़ गई कि यह सब कन्नू की करतूत है। इधर उधर देखने लगी, क्या देखती है कि श्रीकृष्ण एक उल्टे हुए ऊखल पर खड़े होकर छींके पर से माखन ले-लेकर बन्दरों को लुटा रहे हैं। वे भय के कारण चौकन्ने होकर चारों ओर ताकते भी हैं कि कहीं माता न देखले। भागवत् में इसी का वर्णन करते हैं :

> उलूखलाङ्घ्रेरुपरि व्यवस्थितं
> मर्काय कामं ददतं शिचिस्थितम्।
> हैयङ्गवं चौर्यविशङ्कितेक्षणं
> निरीक्ष्य पश्चात् सुतमागच्छनैः ॥

मैया को आती देखकर आप नौ-दो-ग्यारह हो गये। माता छड़ी हाथ में लेकर पीछे-पीछे दौड़ने लगी। पर भगवान् तो भागते ही रहे।

"निगमनेति सिव ध्यान न पावा ।
ताहि धरे जननी हठि धावा" ।।

(रा० च० मा०)

अब तो श्रीकृष्ण की झाँकी विलक्षण हो गई । वे हाथों से अपनी आँखों को मसलने लगे । आँसू की धारा इस तरह बहने लगी कि मुँह पर काजल की स्याही फैल गई । वे बहुत रोये-चिल्लाये उनके रोदन का करुण स्वर सुनकर आस-पास की गोपियाँ दौड़ गईं वे कहने लगी :

यशोदा तेरो भलो हियो है माई ।
कमलनयन माखन के कारण बाँधे ऊखललाई ।।
जो संपदा देव-मुनि दुर्लभ सपनेहुदेत न दिखाई ।
या ही ते तू गरब भुलानी, घर बैठे निधि पाई ।।
सुत काहू के रोवत देखत दौरिलेत उरलाई ।
अब अपने घर के लरिका पै इती कहा जड़ताई ।।

(सूर)

पर यशोदा उनकी कब सुनती है, वे लगी श्रीकृष्ण को रस्सी में बाँधने । पर बांधते समय रस्सी दो अंगुल छोटी पड़ जाती थी । ज्यों-ज्यों अधिक रस्सी जोड़ती गई, त्यों-त्यों वे दो-दो अंगुल छोटी पड़ती गई । सभी गोपियाँ तथा माता भी यह देखकर चकित हो गई । माता को श्रीकृष्ण ने पसीने से लथ-पथ देखकर वे स्वयं ही कृपा करके रस्सी में बंध गये ।

"दृष्ट्वा परिश्रम कृष्णः कृपयाऽऽसीत स्वबन्धने" कैसा मनोहर दृश्य ! गोपी यशोदा की सराहना कौन कर सकता है; तभी तो कहना पड़ता है :

यशोदया समा कापि देवता नास्ति भूतले ।
यया उलूखले बद्धो मुक्तिदो मुक्तिमिच्छति ।।

इसी परम मनोहर दृश्य को सामने रखकर संत शिरोमणि तुलसीदास जी के मुख से भी निकल पड़ा :

जिन बाँध्यो सुर असुर नाग मुनि प्रबल करम की डोरी।
सोइ अविच्छिन्न ब्रह्म जसुमति हठि बाँध्यो सक्यो न छोरी ।।

धन्य हैं वे गोप और धन्य हैं ब्रज की गोपियाँ जिनके वश में वे भगवान हैं जो सम्पूर्ण चराचर के स्वामी हैं विल्व मंगलजी भी कहते हैं :—

परमिममुपदेशमाद्रियध्वं
निगमवनेषु नितान्त खेदखिन्नाः।
विचनुत भवनेषु वल्लीवीनां
मुपनिषदर्थं मुलूखले निवद्धम् ।।

"वेदों में ब्रह्म को खोजते-खोजते उन्हें न पाकर दुःखी हुये ब्रह्म प्रेमी ऋषियों ! इधर कान दीजिये, हम तुम्हारे ब्रह्म को बतावें। यदि तुम वास्तव में ब्रह्म का साक्षात् दर्शन चाहते हो तो उस गोपी के घर जाकर देखो, वह उपनिषद का तत्त्व परंब्रह्म परमात्मा ऊखल में बँधा हुआ है।

(विस्तृत चरित्र के लिए अलग ही पुस्तक छपने वाली है।)

————

सुन्दरता क्या है ?

विश्व का प्रत्येक प्राणी सौन्दर्य की ओर आकृष्ट होता है। क्या मूर्ख और क्या विद्वान् सभी सौन्दर्योपासक होते हैं। प्रत्येक स्त्री-पुरुष अपने सौन्दर्य की वृद्धि के प्रयत्न में लगा रहता है। देश की काफी सम्पत्ति केवल सौन्दर्य-वर्द्धक वस्तुओं में व्यय की जाती है। पर यह सदा स्मरण रखना चाहिए कि वाह्य सौन्दर्य कोई सौन्दर्य नहीं है। असली सौन्दर्य का पता तो बहुतों को है ही नहीं। यहां पर असली सौन्दर्य पर कुछ प्रकाश डाला जाता है।

जो मनुष्य नाना प्रकार के शृङ्गार से युक्त होकर अपने को सुन्दर मान बैठते हैं वे भारी भूल में हैं। जो सौन्दर्य क्रीम, पाउडर, स्नो और वस्त्रादि पर निर्भर करता है वह वास्तव में सौन्दर्य नहीं है। किसी विद्वान के विचारानुसार शृङ्गार वही करता है जिसको अपनी सुन्दरता में विश्वास नहीं है। ऐसे तो ईश्वर की सृष्टि में कोई भी वस्तु, व्यक्ति और क्रिया असुन्दर है ही नहीं। उसमें भी मानव तो सुन्दरतम प्राणी है। ईश्वर ऐसा साधारण कलाकार नहीं है, जिसकी सृष्टि कला पर कोई नाक-भौं सिकोड़ सके। वह स्वयं सुन्दर है और उसकी सृष्टि भी सुन्दर है। जो कुछ असुन्दरता दृष्टि-गोचर है वह जीव-कल्पित संसार में ही है।

अष्टावक्रजी स्वय तो आठ अङ्गों के टेढ़े थे। उनको देखकर जीवन्मुक्त ज्ञानी की भी हँसी नहीं रुकती थी। पर उनका जीवन इतना पवित्र और सुन्दर था कि राजर्षि जनक भी उनके शिष्य हो गये। जो भी लोग अपनी वाह्य असुन्दरता को अभिशाप मानते हैं उनको अष्टावक्र की जीवनी से शिक्षा लेनी चाहिये।

मानव यदि चाहे तो अपने को इतना सुन्दर बना सकता है कि सारा संसार उसकी ओर आकृष्ट होकर उसके पीछे-पीछे चलेगा। यही नहीं, स्वयं परमात्मा भी उसका पीछा नहीं छोड़ेगा; क्योंकि वह स्वयं सकल-सौन्दर्य-सम्पन्न होकर भी सौन्दर्य का ही उपासक है।

सुन्दरता की मांग सारे संसार को है। अतः जो मनुष्य सुन्दर होगा उसकी मांग सारे संसार को होगी ही।

जिसका स्वभाव उदार, शान्त और निर्मल है उसकी ओर सभी आकृष्ट होते हैं। अतः सुन्दरता के लिए स्वभाव का सुधार करना परमावश्यक है।

जो स्वार्थ रहित होकर संसार की सेवा करता है उसकी माँग सबको होती है। सभी उसके पीछे रहते हैं। स्वार्थरहित सेवक के सभी दास हो जाते हैं, पर स्वार्थी मनुष्य स्वामी होकर भी सबका दास बन जाता है। इसलिये स्वार्थरहित सेवा करना सुन्दरता का हेतु है।

महान् पुरुषों के संग में रहते-रहते भी मनुष्य में आकर्षण एवं सुन्दरता की अभिव्यक्ति होने लगती है।

सुन्दर विचार वाले मनुष्य का प्रभाव दूसरे पर अवश्य पड़ता है।

यह तो सच्ची बात है कि मनुष्य अपने विचार के अनुरूप ही होता है। अतः सुन्दर विचार से सौन्दर्य की अभिवृद्धि होती है।

सदाचार, श्रम, संयम, सात्विकता, मधुर-भाषण, दान, प्रसन्नता, स्वाध्याय, सुन्दर स्वास्थ्य, स्वच्छता, निष्कपटता, भगवद्विश्वास, भगवत्स्मरण, इच्छाशक्ति, सत्य-संकल्प, सत्य-प्रियता, आत्मसम्मान आत्मज्ञान एवं निष्कामता आदि सभी मनुष्यों के सर्वोत्तम भूषण हैं, जिनको पाकर कोई भी स्त्री-पुरुष समाज में चमकने लगता है। इनके विपरीत जो कुछ है, एवं परदोष-दर्शन,

परापवाद, परचर्चा, परस्त्री-प्रेम, पर-निन्दा, पर सम्पत्ति और क्रोध आदि ये सभी असुन्दरता के लक्षण हैं।

जो भी स्त्री या पुरुष त्यागरूपी सिंहासन पर आसीन है, वैराग्यरूपी मुक्तामाला से युक्त है, निष्कामतारूपी श्वेत वस्त्र धारण करता है, शीलरूपी भूषण से सुशोभित है और ज्ञान का मुकुट जिसके सिर पर है, वह ऐसा सुन्दर शोभने लगता है कि स्वयं सौन्दर्य-निधान सर्वशक्तिमान् परमात्मा भी उससे मिलने के लिये लालायित रहता है।

सियावर रामचन्द्र की जय !

अपना निर्माण कीजिये

प्रत्येक मानव का परम कर्तव्य है—आत्मनिर्माण। आत्मनिर्माण से ही समाज का निर्माण भी हो सकता है। आत्मनिर्माण का तात्पर्य है—अपने को सुन्दर बनाना। बाह्य सौन्दर्य से कोई सुन्दर नहीं होता है। आजकल देश की बहुत-सी सम्पत्ति बाह्य शृंगार-सामग्री में व्यय होती है। क्रीम, पाउडर साबुन स्नो, तेल-फुलेल भाँति-भाँति की खर्चीली पोशाकें आदि पदार्थों के प्रयोग से ही लोग अपनी सुन्दरता की वृद्धि करना चाहते हैं। पर यह कोरी भूल है। फैशन-विलासिता और शौक से फिजूलखर्ची, विक्षोभ और शोक ही बढ़ता है—सौन्दर्य नहीं। जो अपना निर्माण करना चाहते हैं अथवा अपने-आपको वास्तव में सुन्दर बनाना चाहते हैं, उनमें पाँच लक्षण अवश्य होने चाहिये। वे पाँच लक्षण हैं—(१) इन्द्रियों पर विजय, (२) लोक-सेवा, (३) भगवत्स्मरण, (४) सत्य की खोज और (५) आत्मनिरीक्षण।

जो अपनी इन्द्रियों पर विजय नहीं पा सकता है, वह इन्द्रियविषय-लोलुपता के वश में होकर निरन्तर अनित्य दुःखमय और परिवर्तनशील सुख-सौन्दर्य की ओर दौड़ते-दौड़ते वस्तु, व्यक्ति तथा परिस्थिति का दास होकर अनेक प्रकार की निर्बलताओं का शिकार बन जाता है। फलतः वह कभी अपना हित नहीं कर सकता।

जो जितेन्द्रिय बनना चाहते हैं वे लोक-सेवा करें। सेवा करने से सुखासक्ति का नाश हो जाता है और इसके नाश से स्वार्थभाव भी पूर्णरूपेण गल जाता है जिससे मनुष्य जितेन्द्रिय बन जाता है। जबतक स्वार्थभाव रहता है, तब तक मनुष्य के हृदय में वास्तविक जितेन्द्रिय बनने की लालसा तक भी नहीं जागृत् होती। सेवा का तात्पर्य होता है—दुखी व्यक्ति को देखकर करुणा का भाव उत्पन्न हो जाना और सुखी व्यक्ति को देखकर मन प्रसन्नता से खिल

जाना। दुखी व्यक्तियों को देखकर जो करुणार्द्र हो जायगा, वह अवश्य ही अपना सुख उनको बाँट देगा। फलतः वह सुख की दासता से मुक्त हो जायगा। यही मानवता के विकास का मूलमन्त्र है। सेवा के द्वारा ही आत्मनिर्माण तथा समाज का निर्माण—दोनों सुगम हैं।

अपना निर्माण करने के लिये भगवत्स्मरण सर्वोत्तम उपाय है। मनुष्य जैसा चिन्तन करता है, वैसा ही वह बन जाता है। "महानिति भावयन् महान् भवति"—जो महान् का चिन्तन करता है वह महान् हो जाता है। इसमें जरा भी संदेह नहीं। भगवान् से बढ़कर महान् है ही कौन ? अतः भगवच्चिन्तन का नित्य-निरन्तर अभ्यास करते रहना चाहिये। जो भगवच्चिन्तन नहीं करता है—वह भोगों का चिन्तन तो करेगा ही, जिसका फल होगा सत्यानाश। भगवान् का स्मरण-चिन्तन स्वतः होता रहे—इसके लिये भगवान् के साथ आत्मीयता (अपनापन) और उनकी आवश्यकता होनी चाहिये।

जो सत्य की खोज करता है उसको सत्य की प्राप्ति अवश्यमेव होती। पर इसके लिये जाने हुए असत्य का त्याग तो करना ही पड़ेगा। असत् का सङ्ग कर लेने से ही मनुष्य को मृत्यु का भय तथा संदेह बना रहता है। जो मनुष्य आत्मनिर्माण की ओर अग्रसर होना चाहता है, उसको चाहिये कि शीघ्रातिशीघ्र असत के संग का त्याग कर दे अर्थात् जो कर्म, जो सम्बन्ध तथा जो विश्वास-विवेक-विरोधी हो उससे सम्बन्ध तोड़ ले। ऐसा करने पर वह सत्य को प्राप्त कर अमर और सर्वथा संदेहरहित हो जायगा। यही मानव जीवन का फल है।

साधक को समय-समय पर आत्मनिरीक्षण भी करते रहना चाहिये। हैंऐसा करने से अपने बनाये हुए दोषों की निवृत्ति हो जाती है और प्राप्त बल, योग्यता तथा परिस्थिति का सदुपयोग भी होने लगता है। अपने अंदर जो-ज

दोष हों, उनका तुरन्त ही त्याग कर देना चाहिए। पर दूसरे व्यक्ति के दोषों का दर्शन भूलकर भी नहीं करना चाहिये। जो परदोष-दर्शन में लगे रहते हैं, उनको अपना दोष नहीं सूझता। परदोष-दर्शन तथा परचर्चा से निरन्तर बचते रहना चाहिये। सत्संग, स्वाध्याय तथा श्रवण-मनन का जो फल है, वही आत्म-निरीक्षण से प्राप्त होता है। साधक को चाहिये कि दूसरों के साथ वैसा ही व्यवहार करे, जैसा व्यवहार वह दूसरों से अपने प्रति चाहता है। अतः आत्म-निरीक्षण आत्मनिर्माण के लिये परमावश्यक है।

भगवान् सबको सद्बुद्धि प्रदान करे।

————

श्री राम

सेवा का महत्त्व

मानव-जीवन का सबसे अच्छा उपयोग सेवा में है। यह कहावत प्रसिद्ध है भी। "सेवा से ही मेवा मिलता है" अलौकिक सुख की प्राप्ति होती है सेवा से। अतः अपने समय को सेवा में लगाइये और अपने जीवन को सुन्दर बनाकर महान् लाभ का भागी बनिये।

अपने मित्रों की सेवा कीजिये।

अपने प्रेमियों की सेवा कीजिये।

अपने घर पर आये हुए अतिथियों की सेवा कीजिये।

चिन्ता मत कीजिये कल हम क्या खायेंगे। कल किसने देखा है। आज आपके पास जो अन्न-वस्त्र और शक्ति वर्तमान है उन सबको सेवा में लगा दीजिये। यही आत्मोत्सर्ग के पथ का नियम है। यही अध्यात्म-मार्ग का प्रथम सोपान है।

आप स्वयं कल की चिन्ता करेंगे तो भगवान् पर विश्वास ही कहाँ ? कल की चिन्ता तो वे प्रभु स्वयं करेंगे क्योंकि वे करुणासागर और विश्वम्भर हैं।

"चिन्ता दीनदयाल को मो मन सदा अनन्द ॥"
"है नाम हरि का जग पालक मम जीवन चिन्ता क्यों करनी।"

सेवा-पथ पर चले चलने के पहले स्वार्थ, लोभ और अभिमान का त्याग करना पड़ेगा। सेवा और स्वार्थ एक साथ नहीं रहता। क्रोध का त्याग

तो करना ही होगा। सेवा ही परम तप है और सेवा ही श्रेष्ठ यज्ञ है। सेवा ही परम प्रभु की पूजा है। अतः सेवा कीजिये।

सेवा के लिये धन का त्याग कर दीजिये पर मान का त्याग करना कठिन ही नहीं अति कठिन है। दान करके फिर मान क्यों करना चाहिये। सहनशीलता को अपनाइये और सुख-दुःख लाभ-हानि एवं मानापमान में सम रहिये। तभी आप सच्चे सेवक बन सकेंगे।

सब के साथ सहयोग और सहानुभूति का भाव रखिये। आपको भी सहयोग और प्रेम मिलता रहेगा। सभी आपके मित्र और सहयोगी बन जायेंगे। सबके प्रति अपने हृदय में शुभ कामना कीजिये तो सभी आपके लिए शुभ कामना करेंगे। सभी में सद्गुणों के दर्शन कीजिये, सभी को अच्छा निर्देश दीजिये और सभी की उन्नति में विश्वास कीजिये तो आप भी स्वयं सद्गुणों के भण्डार बन करके उन्नत हो जायेंगे। सफलता और सुख आपके पाँव चूमेंगे।

सेवा करते-करते आप सर्वप्रिय बन जायेंगे। सभी आपको सहयोग देने लगेंगे जिससे आप शीघ्र ही लक्ष्य पर पहुँच जायेंगे। सब के हितैषी बन-कर रहिये और सभी इष्ट-मित्रों के साथ घनिष्ट सम्पर्क रखते रहिये। उनसे मिलते रहिये और पत्र-व्यवहार द्वारा प्रीति का आदान-प्रदान करते रहिये। इससे आपको शांति मिलेगी और उत्साह बढ़ेगा। स्मरण रखिये कि मित्रों का प्रोत्साहन, धैर्य और विश्वास मनुष्य को सदा आगे बढ़ाते रहते हैं।

सदा अपने अनुयायियों में सहयोग की भावना बढ़ाते रहिये। सहयोग ही अनुशासन का कारण है। यदि आप लोक-प्रिय बनना चाहते हैं अथवा दूसरों का प्रेम प्राप्त करना चाहते हैं तो सेवा कीजिये।

अपने परिजनों की सेवा करके सर्वप्रथम उनका सहयोग और प्रेम प्राप्त कीजिये। अपने स्वास्थ्य को भी ठीक हालत में रखिये। हमारा स्वास्थ्य भोजन, निद्रा और ब्रह्मचर्य पर निर्भर करता है। स्वयं स्वस्थ रहिये और अपने परिजनों के स्वास्थ्य की भी रक्षा कीजिये। याद रखिये :—

The easiest way to be happy is to see that others are happy.

The easiest way to be healthy is to see that others are healthy.

समय का मूल्य समझकर समय का सदुपयोग करना मत भूलिये। सभी कार्य नियत समय पर ही कीजिये। एक क्षण भी व्यर्थ मत जाने दीजिये। तभी आपको सेवा करने का समय मिलेगा। जो लोग समय का ठीक-ठीक विभाजन करना नहीं जानते हैं वे किसी भी काम को उचित समय पर नहीं कर सकते। वे शिकायत करते हैं—"भाई ! क्या कहें, समय ही नहीं मिलता है।" समय का विभाजन करना विदेशियों से सीखना चाहिए। उनके सभी कार्य निर्धारित समय पर ही हुआ करते हैं। वे एक क्षण भी व्यर्थ नहीं जाने देते। हमारे देश में एक बहुत बड़ा रोग फैल गया है। वह यह कि आजकल के अप-टू-डेट जेन्टलमैन, लेडीज और स्टूडेन्ट्स प्रातःकाल में शय्या त्याग नहीं कर सकते हैं। सूर्योदय के पश्चात् दो-तीन घंटे बाद तक भी वे कम्बल के भीतर घुसे रहते हैं। फलतः कब्जियत का रोग, आलस्य, प्रमाद, दीर्घसूत्रता और उदासी के शिकार वे शीघ्र ही हो जाते हैं। समय का अभाव तो होना ही चाहिए। सोवे सो खोवे। अंग्रेज कूटनीति के बल पर, रूसी विज्ञान के बल पर, अमेरिकन सम्पत्ति के बल पर और चीनी छल-कपट के बल पर ससार पर विजय करना चाहते हैं पर भारतवर्ष तो आलस्य के बल पर ही सोते-सोते विजय का स्वप्न देख रहा है। वाह रे देश !

अतः आप यदि सच्चा सेवक बनना चाहते हैं तो ब्रह्मचर्य का पालन कीजिए। आत्म-विश्वास रखिये और इन्द्रियों का संयम कीजिए। कर्त्तव्य-परायणता और समय का सदुपयोग पर विशेष ध्यान दीजिये। आप सदा सुखी रहेंगे। श्रीमद्गोस्वामीजी लिखते हैं :—

परहित बस जिनके मन माहीं। तिनकहँ जग दुरलभ कछु नाहीं।
परहित लागि तजै जो देही। संतत संत प्रसंसत तेही॥

एक अन्य संत लिखते है :—

तन से सेवा करो जगत की मन से प्रभु के हो जाओ।
शुद्धि बुद्धि से तत्वनिष्ठ हो मुक्त अवस्था को पाओ।

सियावर रामचन्द्र की जय।

आदर्श जीवन के लिये

मनुष्य को सदा प्रसन्न रहना चाहिये। खिन्नता चिन्ता, शोक, भय तथा क्रोध के लिये कोई स्थान नहीं है। भारी से भारी विपत्ति का पहाड़ क्यों न टूट पड़े धीर मनुष्य को चाहिये कि वह हताश न हो। जीवन में निराशा तो आने ही न दे। सर्वत्र और सर्वदा आशावान् बना रहे। जो दुःखी व्यक्तियों को सुख देता रहता है वह सदा प्रसन्न रहता है।

हिंसा, चोरी, असत्य, दुराचार, व्यभिचार, जूआ, मद्य, कुसंग और क्रोध का जो सेवन करता है वह कभी सुखी तथा प्रसन्नचित नहीं रह सकता। अतएव इनका सर्वथा त्याग कर देना चाहिये।

क्षमा, नम्रता, शीलता, शौच, संयम, सन्तोष दया, ब्रह्मचर्य, तप और त्याग आदि सद्गुणों के आचरणों से शान्ति प्राप्त होती है। शांति में ही सच्चा सुख और सामर्थ्य निहित है।

जो पर निन्दा में लगे रहते हैं वे अपना विकास कभी नहीं कर सकते। उनका जीवन सदैव दोष पूर्ण रहता है। सर्वथा निर्दोष बनने के लिये दूसरों के दोषों का देखना बन्द कर देना चाहिये। और अपने में जो दोष हों उनको जान करके त्याग कर देना चाहिये।

समय बड़ा बहुमूल्य है। अतः प्रत्येक क्षण को अमूल्य कार्य में ही लगाना चाहिये। दीन-दुखियों की सेवा, सत्संग, तथा भगवच्चिन्तन से बढ़ कर अमूल्य कार्य और क्या हो सकता है।

आदर्श-जीवन की इच्छा रखने वाले साधक को चाहिये कि सदा संयमपूर्ण तथा सादगीपूर्ण रहे। शारीरिक सुख के फेर में पड़ने से जीवन

दुःखमय बन जाता है। शरीर की सेवा तो करनी चाहिये पर इससे ममता कर लेना तो भारी भूल है।

आत्म-सुधार के लिए ईश्वर-प्रार्थना अमोघ उपाय है। प्रतिदिन एकान्त में एकाग्र होकर दिल खोलकर प्रार्थना करनी चाहिये। उचित तो यह है कि अपने जीवन को प्रार्थनामय बना लिया जाय प्रार्थना से शक्ति और निर्दोषता की प्राप्ति शीघ्र होती है।

तन और मन को कभी भी बेकार नहीं रहने दे। तन से संसार की सेवा करनी चाहिये और मन से निरन्तर भगवत्स्मरण। सेवा स्वार्थरहित होनी चाहिये। जो संसार से कुछ नहीं चाहता है पर उसकी सेवा करता है उसको सारा संसार चाहने लगता है और सभी उसके प्रति सद्भावना करने लगते हैं जिससे जीवन पूर्ण उन्नत हो जाता है। जो संसार से कुछ भी चाहता है उससे सारा संसार दूर भागता है। अतएवं हमें देना सीखना चाहिये लेना नहीं। यदि देने के लिए अपने पास कुछ भी नहीं हो तो सहानुभूति के दो मीठे शब्द ही सही। मीठा शब्द सबको प्रसन्न कर देता है। श्री तुलसीदासजी कहते हैं :—

तुलसी मीठे वचन से, सुख उपजत चहुँ ओर।
बसीकरन यह मन्त्र है, तजदे वचन कठोर॥

———

श्री राम

प्रेम कैसे हो ?

दुर्लभ मानव-जीवन का सदुपयोग भगवान् से प्रेम करने में ही है । भोग तो कुत्ते और सियार भी भोग लेते हैं। भगवत्प्रेम की प्राप्ति के विना इस मानव-जीवन का कोई मूल्य नहीं है अतः प्रभु से प्रेम कीजिये ।

पर प्रेम हो कैसे ? भोगों की आसक्ति तो छूटती ही नहीं । दिन-रात मन-मीन भोग-वारि में मग्न रहता है ।

वात तो सच्ची है । प्रेम चाहते हैं । जहाँ चाह है वहाँ राह भी है । प्रेम किसी साधना से मिलने वाली वस्तु नहीं है । यह तो भगवान् या उनके भक्तों से ही प्राप्त हो सकता है । मोक्ष प्राप्त करना हो तो साधना कीजिये पर प्रेम तो तभी मिलेगा जब प्रभु पिघलेंगे ।

सर्व प्रथम श्रद्धा कीजिए । श्रद्धापूर्वक प्रेमी संतों के चरण-कमलों में पड़े रहिए । पर सावधान कहीं मन ऊव न जाय । वहाँ से हटिए मत न जाने उनके हृदय में किस समय प्रेम की लहरें उफन पड़ेंगी । आप जानते नहीं कि उनके हृदय में प्रेम का सागर होता है । कभी-कभी वह वहने लगता है । निरन्तर प्रकट नहीं होता । पास में वैठते-बैठते कभी न कभी आपके ऊपर एक बूंद भी प्रेम का छींट पड़ ही जायगा । फिर क्या है—आप कृतार्थ हो जायँगे । जन्म सफल हो जायगा । प्रेमी सन्त का संग कीजिए । पर लालसा प्रेम की ही होनी चाहिये । धीरता की वड़ी आवश्यकता है । स्मरण रखें— कल्पों की साधना के वाद किसी वड़भागी पुरुष को ही प्रेम की प्राप्ति होती है । प्रेम होने को होता है तो एकाएक हो ही जाता है । पर यदि कोई प्रेमी संतकृपा कर जायँ ।

गोपियों का प्रेम कितना श्रेष्ठ था यह तो हमारी बुद्धि की पहुँच में नहीं आ सकता। भगवान् की अतिशय कृपा थी उनके ऊपर तभी तो वे उनके रास में भी सम्मिलित हो सकीं। सुनते हैं वेद की ऋचाएँ, दण्डकारण्य के ऋषि-मुनि-वृन्द, जनकपुर की स्त्रियाँ तथा गोलोक में रहने वाली श्रीराधिकाजी की नित्य सखियाँ ही गोपियां हो गई थीं। पद्म-पुराण के अनुसार स्वयं "ब्रह्म विद्या" ही नौ कल्पों के तप करके भगवान् की प्रेयसी बन सकीं। कहते हैं कि मुरलीधर की मधुर मुरली ही ब्रह्म-विद्या बनी थी। मतान्तर से यही यशोदा हुई हैं।

बहुत-से ब्रह्म-ज्ञानी सन्त भी भगवत्प्रेमी बनते सुने जाते हैं। काशी के सुप्रसिद्ध वेदान्ती स्वामी प्रकाशानन्दजी सगुण ब्रह्म तथा उनके भक्तों की निन्दा करने वालों में से एक थे। पर श्री महाप्रभु चैतन्य जी के दर्शन से वे अपने निर्गुण ब्रह्म को तो सदा के लिये भूल ही गए। बन गए सगुण ब्रह्म के सखी। उनका जीवन ही पल्टट गया।

एक और बात है। प्रेम साधना से नहीं मिलता है। इसलिए आप जप-तप, कथा-श्रवण आदि छोड़ दें, यह ठीक नहीं। इन साधनों से तो आप भगवत्प्रेम के पात्र बनेंगे ही। पात्र में ही दूध रखा जाता है। पात्र बन जाने पर कभी प्रभु की कृपा होगी तो प्रेम हो ही जायगा।

प्रेम की इच्छा करके ही कितने सन्त महात्मा घोर तप करते रहते हैं तो वे वृन्दावन अथवा अयोध्या धाम में वृक्ष, लता, पत्थर गाय, फल, फूल और कीट पतंग ही होना चाहते हैं। क्योंकि इन धामों में भगवत्प्रेम का प्रवाह बहता रहता है। किसी प्रेमी सन्त की कृपादृष्टि कभी पड़ी कि वे धन्य हो जायेंगे।

प्रेम का निराला पंथ होता है। यह तो प्रेमी ही जाने। यह दीन लेखक तो अभागा ही रहा। अभी तक भोगों में ही भुगतान होता रहा। न जाने कब प्रेम रस की एक बूँद भी प्राप्त हो सकेगी। कभी-कभी तो मन

करता है वृन्दावन और अयोध्यापुरी के वृक्ष-लता और फल-फूलों का ही चिन्तन करता रहूँ। चिन्तन करते-करते मृत्यु हो गई तो श्री गीताजी के अनुसार उन योनियों को तो प्राप्त कर लूँगा। वहाँ के वृक्ष, पत्ते भी दिव्य ही होते हैं। भक्तों के चरण-सरोज-रज के पड़ने से कभी न कभी भगवत्प्रेम का उदय हो ही जायगा।

प्रेम की प्राप्ति में बाधक है विषय-चिन्तन। विषय-चिन्तन ही भगवान् से विमुख करता है। दिन भर में एक दो घंटे के लिए भी मन प्रभु की ओर खिच जाय तो बेड़ा पार है। इसके लिए लीलामयं प्रभु की ललित लीलाओं का चिन्तन करना पड़ेगा। और चिन्तन करते-करते अपने मन को डुबा देना है उसी लीला सुधा के सागर में। धीरे-धीरे मन की मलीनता दूर हो जायगी। और खिच जायगा प्रभु की ओर। वे कृष्ण तो हैं ही चित्त को चुराने में बड़े चतुर। चित्त ही नहीं वे भक्तों का सर्वस्व चुरा लेते हैं। सुनिये न एक भक्त महोदय क्या कह रहे हैं :

पादाश्रितानां च समस्तचौरं श्रीराधिकाया हृदस्यचौरम।
नीलाम्बुजश्यामलकान्ति चौरं चौराग्रगण्यं पुरुषं नमामि॥

चुराते ही नहीं उसमें रमण भी करते हैं—तभी तो वे हैं राम—"रमते सर्व भूतेषु"। उनकी एक मधुर लीला का चिन्तन कीजिये—कितनी ललित लीला है। ऐसे तो उनकी सभी वस्तुएँ ललित ही हैं—फिर नाम और लीला का तो कहना ही क्या।

"नाम ललित लीला ललित ललित रूप रघुनाथ।
ललित वसन भूषन ललित ललित अनुज सिय साथ॥"

बालक राम आज प्रातःकाल से ही रो रहे हैं। कौशल्या माता पुचकारती हैं पर चुप नहीं होते। माता बैठकर दूध पिलाने लगती है। पर वे दूध को खींचते ही नहीं। आँखों में अश्रुबिन्दु झलक रही है। अंजन घुलकर कपोल

पर आ गया है। माता गोद में लिये ही खड़ी हो जाती है। पर रोना बन्द नहीं हुआ। माता का मन उदास है। चौथेपन में एक पुत्र हुआ वह भी अच्छा नहीं रहता। नगर की वृद्धा नारियां दौड़ पड़ी। किसी ने कहा—"जाफर चटाओ—बच्चे को सर्दी लग गई है।" कोई बोली—"अरी कौशल्या–तुम बड़ी भोली हो बच्चे को तो किसी स्त्री ने नजर लगा दी है।"

ओझा बुलाये गये। झाड़ फूक होने लगा। पर रोना बन्द नहीं हुआ। किसी ने कहा—"अरे! भूत चढ़ गया–भूत।" भूत झाड़ने वाले भी असफल ही रहे। एक पण्डित जी आये। वे बोले—"मैया! तुम चिन्ता मत करो। अभी मैं ठीक किये देता हूँ। मगर तुलादान करना पड़ेगा। तुलादान किया गया—पर लाभ कुछ भी नहीं। देवता–पितर, ग्रहादि सब पूजे गए। पर सब असफल।

कौशल्या की आशा पर पानी फिरता जा रहा है। इतने में स्मरण हो आया। गुरु वशिष्ठजी की परम कृपा से ही तो यह पुत्र रत्न हुआ है। वे ही उबारें इस संकट से। गुरुजी को बुलाने के लिए एक सेवक भेजा गया। गुरुजी चल पड़े। मैया पांव पर रोने लगी। गुरुजी ने भगवान् के मस्तक पर ज्योंही अपना कर-कमल रखा कि "राम किलकन लागे।" गुरुजी को दर्शन देने के लिये ही तो प्रभु ने यह बहाना बनाया था। गुरुजी कई दिनों से दर्शन के भुखे थे। कैलाश पर्वत से आकर शंकर जी ज्योतिषी बनकर दर्शन के प्यासे रह जायँ—ठीक नहीं। दर्शन करके मुनि मग्न हो गये माता ने बालक को गुरु की गोद में रख दिया। लम्बी-लम्बी सफेद दाढ़ी देखकर रामजी डर गये। उछल कर गिरे माँ की गोद में।

वाह रे लीलामय प्रभु!

———

श्री राम

हम शान्ति चाहते हैं

आजकल संसार में चारों ओर अशान्ति का साम्राज्य छा गया है। शान्ति नाम की कोई वस्तु है भी कि नहीं यह भी कहना कठिन हो गया है। बड़े-बड़े लखपतियों से जाकर पूछिये—वे अपने में शान्ति का अभाव ही वतलायेंगे। क्या गृहस्थ, क्या साधु-सन्त, क्या स्त्री, क्या पुरुष, क्या वृद्ध, क्या जवान, क्या गरीव, क्या अमीर सभी अशान्ति की आँच में झुलस रहे हैं। जव शान्ति ही नहीं तो सुख ही कहाँ? "अशान्तस्य कुतः सुखम्"

कहीं भी जाइये—जिसको देखिए वही दुःखी, निराश और रोगी दिखाई पड़ता है। दीवाली के दिन भी दिवाला ही मनाया जा रहा है। प्रसन्नता की पोशाक पहनने के वदले मुहर्रमी लिवास में लोग नजर आ रहे हैं। आखिर इसका कारण क्या है? समझ में नहीं आता कि यह विकट समस्या कैसे हल हो। जब कुएँ में ही भाँग पड़ जाय तो कितने को क्या समझावें।

आप शान्ति चाहते हों तो वही काज कीजिये जिससे प्रसन्नता की प्राप्ति हो। मित्रों से प्रेम करते हुए उनके साथ हँसी खुशी से समय यापन कीजिए। कल की चिन्ता का परित्याग कर दीजिए। कल देखा ही किसने है? आज तो प्रसन्नता का वाना पहन लीजिये।

आप स्वयं प्रसन्न रहिये और अपने साथियों को भी प्रसन्न रखिये। चाहे किसी प्रकार की भी परिस्थिति आ पड़े आप चिन्ता को मन में मत आने दीजिये। आनन्द तो आपका स्वभाव ही है। उसे आप अपनाए रहिये। सफलता होगी ही इस पर निश्चित रहिये। और किसी भी कार्य के सम्पादन में शीघ्रता मत कीजिए।

आप किसी को भी अपना शत्रु मत समझिए। कोई भी मनुष्य आपका अहित नहीं कर सकता है। सभी आपके हितैषी हैं और आप भी सबका हित ही कीजिये। यदि आप क्रिया से हित नहीं कर सकें तो उनके लिये हित का चिन्तन ही किया कीजिये। किसी के प्रति आपके हृदय में द्वेष नहीं होना चाहिये। यदि कदाचित कोई आपसे शत्रुता-भाव रखता हो तो भी आप उससे प्रेम ही कीजिए। और जैसे उसका हित हो वही कीजिए। स्मरण रखिए आपका अपना मन ही आपका सबसे बड़ा शत्रु है। वह मन जैसा दूसरों के विषय में सोच विचार करता है वैसा ही स्वयं बनता है और दूसरों को भी वैसा ही बनाता है। विचार का बहुत बड़ा प्रभाव पड़ते हुए देखा सुना गया है। अतः अभी से आप निश्चय कर लीजिये कि संसार में कहीं भी कोई आपका दुश्मन नहीं है।

अपने मन से क्रोध, ईर्ष्या और घृणा को हटा दीजिए। ये मानसिक रोगों को उत्पन्न करने वाले हैं जिससे जीवन अशान्त हो जाता है। घृणा तो पिशाचिनी ही है जो आपके रात दिन को भी नरक बना देगी। क्षमा करना सीखिए। एक बार नहीं—सौ बार क्षमा कीजिए। कठोर वचन का प्रयोग भूल कर भी मत कीजिए। धीरे-धीरे बोलिए—सो भी बहुत कम। अधिक मौन रहा कीजिए। जब बोलिए तब सत्य, हितकर और प्रिय वचन बोला कीजिए। यदि आप दूसरों से घृणा ईर्ष्या और क्रोध को छोड़कर प्रेम नहीं कर सकते हैं तो एक काम तो अवश्य ही कीजिए—वह यह है कि आप अपने आपसे ही इतना प्रेम कीजिये कि आपको किसी के दोषों के देखने का समय ही नहीं मिले। पर-दोष दर्शन सबसे बड़ा दोष है जिसके रहते कभी शान्ति नहीं मिल सकती है।

कुसंग का सर्वथा त्याग कर दीजिये। कामी, क्रोधी, लालची और जुआरी पुरुषों से अलग ही रहा कीजिये। कोई क्रोध करे तो प्रसन्नतापूर्वक सहन कर लीजिए। क्रोध करके तो वह अपना ही अहित कर रहा है। आप तो अपनी शान्ति सम्पत्ति को बचाए रहिए। जो क्रोध करता है उसका चेहरा बिगड़ जाता है, भृकुटी टेढ़ी हो जाती है, आंखें लाल हो जाती हैं, होंठ फड़कने लगते हैं, देह थरथर कांपने लगता है और इतना ही नहीं बहुत दिनों तक

उसके मन में इस क्रोध का वेग बना ही रहता है जिससे वह रात दिन बेचैन रहा करता है। रात को निद्रा भी नहीं होने पाती। भला सोचिये तो आप ऐसी दशा में क्यों पड़ें।

महाभारत के अनुसार मुनि वही है जो वाणी का वेग, क्रोध का वेग, तृष्णा का वेग उदर का वेग और उपस्थ का वेग—इन सब वेगों को सहन कर लेता है। आप मुनि बनिये।

किसी से कुछ पाने की आशा मत कीजिये। आशा अशान्ति की जननी है। सेवा कीजिये पर बदले में कुछ चाहना मत कीजिये। वह सेवा है ही नहीं जिसका बदला आप चाहते हो। दूसरों के द्वारा किए गए उपकारों के लिए आप कृतज्ञ बनिए। पर आप जो किसी का उपकार करें तो उसके लिए कृतज्ञता की आशा मत कीजिएं। उसने कृपा करके आपकी सेवा को स्वीकार किया है। उसने तो उपकार ही किया है आपका कि अपनी सेवा का शुभ अवसर आपको दिया।

किसी के बदले कुछ पाने की आशा न रखना—शान्ति के लिए उत्तम उपाय है।

कभी-कभी एकान्त में बैठकर शाँति का चिन्तन कीजिए। विचार कीजिए शान्ति का समुद्र आपके हृदय में लहरा रहा है। आपके पास आनन्द का खजाना है। संसार की कोई भी शक्ति आपकी सम्पत्ति को लूट नहीं सकती है। आपके सम्पर्क में जो कोई संगी-साथी आयेंगे वे भी शांन्ति का अनुभव कर सुखी हो जायंगे।

सियावर रामचन्द्र की जय।

शान्तिः ! शांन्तिः ! शान्तिः !

———

अपने विचार को शुद्ध कीजिये

मनुष्य जैसा विचार करता रहता है वैसा ही बन जाता है, क्योंकि विचार एक सजीव शक्ति है। इसका प्रभाव अवश्य ही पड़कर रहता है। अतएव अपने विचार का सदैव निरीक्षण करते रहिए। कहीं अशुद्ध विचार मन में प्रवेश न कर जाय।

जैसा आपका विचार होगा, आपके शारीरिक विद्युत् के परमाणु आपके चारों ओर वैसा ही मण्डल बना लेंगे। क्या कारण है कि संत महात्माओं के सङ्ग की इतनी महिमा गायी जाती है। उनके निवास-स्थानों पर पहुँचते ही हृदय में शान्ति की लहरें उठने लगती हैं।

जो मनुष्य अपने को दीन, हीन, मलिन और अयोग्य समझता है वह वैसा ही बनकर रह जाता है।

जो अपने को निराश, भीरु और श्रान्त अनुभव करता है, वह वैसा ही होकर रहता है।

फलतः ऐसे मनुष्य के जीवन में शान्ति कहाँ ? वह निरन्तर अशान्ति के सागर में डूबता रहता है।

यदि आप मानव-जीवन के आनन्द को लूटना चाहते हैं तो निराशा का परित्याग कर दीजिये। दयालु परमेश्वर पर पूर्ण विश्वास कीजिये और निरन्तर दृढ़ निश्चय कीजिये कि भयहारी भगवान् के वरद कर-कमल आपके मस्तक पर स्थित हैं, आप शान्ति और चिर-सुख का अनुभव कर रहे हैं। भगवान् तो अपने भक्तों की इच्छा को करने के पूर्व ही पूरी कर देते हैं।

भगवान् ने जिस भक्त के मस्तक पर अपना वरद करकमल रख दिया, उसकी पाप-ताप और माया—सब मिट जाती हैं और वह सदा के लिए अभय हो जाता है। इसलिए तो सन्त-शिरोमणि श्रीतुलसीदासजी कहते हैं—

सीतल सुखद छाँह जेहि करकी मेटति पाप ताप माया।
निसि बासर तेहि कर सरोज की चाहत तुलसीदास छाया।।

आप निरन्तर अपने को भगवान् के निकट ही अनुभव कीजिए। वे जितने निकट हैं, उतने निकट पर तो आपका अपना अङ्ग भी नहीं है। सच्ची बात तो यह है कि आप भगवान् में हैं और भगवान् आप में।

आप निरन्तर अनुभव करते रहिये कि आप भगवान के हैं और भगवान् आपके। एक सन्त महोदय 'साधनपंचामृत' के नाम से पाँच बातें सुनाया करते हैं।

( ) मैं भगवान् का हूँ।
(२) मै भगवान् के दरबार में रहता हूँ।
(३) मैं भगवान् का ही प्रसाद भोजन करता हूँ।
( ) मैं भगवान् की ही सेवा करता हूँ।
(५) मैं भगावान की दी हुई वस्तुओं से ही नर नारायण अथवा विश्वरूप भगवान् की सेवा करता हूँ।

कितनी सुन्दर बातें हैं! मुझे तो बहुत ही पसन्द है यह पंचामृत।

मैं पूर्ण आरोग्य हूँ शान्त हूँ और सफलता देवी मेरे पीछे-पीछे है। मैं निश्चिन्त और निर्भीक हूँ; क्योंकि परम प्रभू मेरे साथ हैं।

सभी जीव-जन्तू मुझे सुख प्रदान कर रहे हैं। किसी से भी मुझे दुख नहीं है। इस वक्त संसार के रूप में मैं उस परम प्रभू की मुनिमन-मोहिनी मधुर मनोहर मूर्ति के दर्शन कर रहा हूँ और उनको मानसिक प्रणाम करता

हूँ। भगवान् की असीम कृपा से मैं समृद्धिशाली हूँ। मैं पूर्णकाम तथा आत्माराम हूं।

मेरे योगक्षेम का वहन तो वे ही विश्वम्भर कर रहे हैं। मेरी सभी आवश्यकताएँ उनकी कृपा से पूरी हो जाती हैं।

भगवान मेरे हृदय में हैं, अतः मैं उनकी शक्ति को पाकर सब कुछ करने में समर्थ हूँ। सभी सद्‌गुण सदाचार मुझमें भरे पड़े हैं। ऐसा निश्चय करते रहें तो कुछ ही समय में आपका जीवन बदल जायगा। अभ्यास की आवश्यकता है।

सियावर रामचन्द्र की जय।

अपने जीवन को सुन्दर बनाइये

मनुष्य के जीवन में निराशा तथा निरुत्साह के लिए कहीं स्थान नहीं है। आप निरन्तर आगे ही बढ़ते रहिये। भगवान् का वरद हस्त आपके मस्तक पर सदा विराजमान है। आवश्यकता है केवल विश्वास करने की। भगवान् में तथा भगवान की अहैतु की कृपा में अटल विश्वास कीजिये। यही आपकी अक्षय पूंजी है। जिसके पास यह विश्वासरूपी अक्षय पूंजी है, वह अपनी जीवन यात्रा को बेखटके सफल बना सकता है। विश्वासी पुरुष के सामने सफलता हाथ जोड़कर खड़ी रहती है।

जो अविश्वासी हैं, उन्हीं का जीवन विपत्तिमय तथा निराशापूर्ण रहता है। उन्हीं के ऊपर संकटों का शासन रहता है और उन्हीं के घर दरिद्रता देवी डेरा डाल देती है।

विश्वास एक महामन्त्र है जिसके द्वारा आप असीम शक्ति तथा अपूर्व बल को प्राप्त कर सकते हैं। अंगदजी की कथा आपने सुनी होगी। ये एक बन्दर थे पर था भगवान् पर पूर्ण विश्वास। दूत बनकर लङ्केश के दरबार में पहुँचे। जिस रावण के रथ की गड़गड़ाहट सुनकर देवताओं के दम निकलने लगते थे, उसी के सामने जाते हुए अंगदजी को जरा भी भय नहीं हुआ। जैसे हाथियों के झुंड में मृगराज सिंह घुस जाता है, वैसे ही ये वानर-राज राक्षसों से घिरे हुए दशानन के दरबार में पहुँच गये। रावण की इच्छा न रहते हुए भी सभी निशाचर इनके तेज के सामने झुक गये और सबने उठकर स्वागत किया।

उठे निशाचर कपि कहँ देखी।

रावण उर भा क्रोध विसेषी॥

रावण और अंगद के बीच बातों की झड़ी लग गई। रावण जो कुछ कहता है, अंगदजी उसका मुँहतोड़ उत्तर देते हैं अन्त में एक ऐसा अवसर आया कि अंगदजी बातों ही बातों में श्री सीता महारानी को ही बाजी पर लगाकर बैठ गये—

जौं मम चरन सकसि सठ टारी।
फिरहिं राम सीता मैं हारी॥

पहले तो रावण खुशी से फूल उठा। जो शङ्कर-पार्वती सहित कैलाश गिरि को हाथ पर उठा सकता है, उसके लिए एक वानर को उठाकर कोसों दूर फेंक देना कौन-सी बड़ी बात थी। उसने तो निश्चय समझ लिया कि सीताजी बिना श्रम ही मिल गयीं। पर बात बड़ी विचित्र रही। अंगदजी को भगवान् के प्रताप और महिमा पर पूर्ण विश्वास था; क्योंकि वे परम भागवत थे। भागवतों को तो भगवान् का ही बल और भरोसा रहता है। उनके भगवान् की महिमा भी तो विचित्र है।

'तृन से कुलिस-कुलिस तृन करई'
'मसकहिं करहिं विरंचि प्रभु अजहिं मसक ते हीन'
'मसक विरंचि विरंचि मसक सम करइ प्रभाउ तुम्हारो'

रावण की आज्ञा से मेघनाद के समान असंख्य योद्धा लग गये, पर अंगद के चरण को टस-से-मस नहीं कर सके। धन्य है भगवान् की महिमा और धन्य है भक्त का विश्वास।

तासु सभा रोप्यो चरन जो तौल्यौ कैलास।
स्वामी की महिमा कहाँ सेवक का विश्वास॥
(दोहावली)

धन्य हैं वे पुरुष, जिनको भगवान् में अटूट विश्वास है। आप ईश्वर के अंश हैं। उन अंशी भगवान् की शक्ति आपके अन्दर काम कर रही है।

अतएव आप अपनी शक्तियों में पूर्ण विश्वास रखकर उन्नति पथ-प चलते रहिये।

आप ईश्वर की शक्ति को पा सकते हैं, उनकी कृपा आपको प्राप्त हो सकती है यदि आप उनके ऊपर विश्वास तथा भरोसा रखें। आपमें ऐसे अपूर्व शक्ति आ सकती है कि आप स्वयं अपनी परिस्थिति का निर्माण क सकते हैं। कोई भी विघ्न-बाधा आपके मार्ग में ठहर नहीं सकती।

सर्वप्रथम आप जैसे-तैसे अपने हृदय को शुद्ध कर लीजिये। फि अपना एक आदर्श लक्ष्य चुन लीजिये। मनुष्य जीवन का परम लक्ष्य त भगवत्प्रेम अथवा भगवान् की प्राप्ति ही है। शय्या के पूर्व, शय्या त्याग पूर्व, स्नान के समय, उपासना के बीच में तथा भोजन के समय में बार बा मन-ही-मन अपने लक्ष्य का चिन्तन करते रहिये। अपने प्रभु से बार-बा प्रार्थना कीजिए। सदा सद्विचारों से अपने अन्तःकरण को भरे रखिये। क कोई कुविचार मन में उठने तक भी न पाये। मनुष्य जैसा सोचता है, वै ही बन जाता है। अतः सदा सावधान! परनिन्दा, पर-दोष-दर्शन, प चर्चा, पर स्त्री और पर-सम्पत्ति से दूर रहिये। आपका जीवन सुन्दरत बन जायगा।

भगवान् सब का भला करें :

———

प्रार्थना का महत्व और उसका स्वरूप

मानवमात्र शान्ति चाहता है-चिरशान्ति ! पर वह शान्ति है कहाँ ? संसार तो अशान्ति का ही साम्राज्य है। शान्ति तो सर्वेश्वर भगवान् में ही हैं। वे ही हमारे परम गतिदाता हैं। और उनके पास पहुँचने के लिए सत्य हृदय की प्रार्थना ही हमारे पंख हैं। उनके अक्षय भंडार से ही शांति और सुख की प्राप्ति होती है।

प्रार्थना कीजिये। अपने हृदय को खोलकर कीजिये। अपनी टूटी-फूटी लड़खड़ाती भाषा में ही कीजिये। भगवान् सर्वज्ञ हैं। वे तुरन्त ही आपकी तुतली बोली को समझ लेंगे। प्रात.काल प्रार्थना कीजिये, मघ्यान्ह में किजिये, संघ्या को कीजिये, सर्वत्र कीजिये और सभी अवस्थाओं में कीजिये, उचित तो यही है कि आपकी प्रार्थना निरन्तर होती रहे। यही नहीं, आपका सम्पूर्ण जीवन प्रार्थनामय बन जाय।

प्रभु से माँगिये कुछ नहीं। वे तो हमारे माँ-बाप हैं। हमारी आवश्यकताओं को वे खूब जानते हैं। आप तो दृढ़ता के साथ उनके मंगल विधान को सर्वथा स्वीकार कर लीजिये। उनकी इच्छा के साथ अपनी इच्छा को एक रूप कर दीजिये। ईसामसीह की तरह आप भी कह दीजिये—

''Thy will, not mine, be done'' 'हे सर्वेश्वर मेरी इच्छा नहीं, तुम्हारी इच्छा, पूर्ण करो।'

ऋषिकेश के गीता-भवन के सत्संग में परम पूज्य स्वामी श्री रामसुखदास महाराज एक बहुत बढ़िया दृष्टान्त दिया करते हैं। मुझे तो वह बहुत प्रिय हैं, अतः संक्षेप में उसे यहाँ उद्धृत कर देता हूँ।

एक भक्त संत कहीं जा रहे थे। फटी लँगोटी थी और हाथ में एक जलपात्र। मस्त थे अपने प्रभु के पवित्र चिन्तन में। चलते-चलते एक नदी आ गई। नौका पर सभी चढ़ रहे थे। संत महोदय भी चुपचाप बैठ गये उसी पर एक कोने में।

नौका बीच नदी में पहुँची। इतने में बहुत भयंकर आँधी उठी नौका अब डूबी, तब डूबी हो रही थी। हवा में बालू के कण उड़-उड़ कर सभी की आँखों में भर गये। मल्लाह नौका को सम्हालने में असमर्थ होकर चिल्ला उठा "भाइयों! यह नौका अभी डूबने वाली है, अपना-अपना होश करना।" सभी के चेहरे फीके पड़ गये। पर संत तो मस्त थे। लगे जलपात्र से नदी का जल ले-लेकर नौका को भरने। लोग दंग रह गये। नौका तो स्वयं डूब रही है और फिर ये पानी भर रहे हैं। किसी ने फटकारा, किसी ने गाली भी दी। पर संत तो उनकी सुनते ही न थे, पानी भरते ही रहे।

देखते ही देखते आँधी हट गयी मल्लाह ने चिल्ला कर कहा 'भाई, घबराओ मत, गङ्गा मैया की कृपा से नौका बच गयी।' सुनते ही सभी होश में आ गये। अब तो संत महोदय पहले के विपरीत नौका का जल नदी में फेंकने लगे। सभी हंस रहे थे—"कितना पागल है यह बाबा।" मल्लाह ने रोष के साथ पूछा—'बाबा! पागल हो गये हो क्या?' बाबा ने शांत स्वर में कहा—'भाई पागल नहीं हूं।' भगवान् की हाँ में हाँ मिला रहा हूं।

एक दिन स्वामी जी ने सत्सङ्गियों से कहा—"भाई जब कभी जो भी परिस्थिति अनुकूल अथवा प्रतिकूल—आ जाए, भगवान् को धन्यवाद दो और हृदय से कहो—प्रभो! मैं तो यही चाहता था।" कितना सुन्दर भाव है! हमने अपनाया इस भाव को कि काम बना।

एक संत उपदेश कर रहे थे। एक सतसंगी भाई ने पूछा—महाराज जी! मैं भगवान् के साथ कैसा सम्बन्ध जोड़ूँ।' संत ने कहा—'उनका फुटबाल (गेंद) बन जा। जिधर की ओर ठुकरायें उधर ही लुढ़क जा।

बस, भगवान् की इच्छा में ही अपनी इच्छा को लीन कर देना--सच्ची प्रार्थना है। इसी प्रार्थना के द्वारा आप ऊपर उठ सकेंगे। खर्च तो एक कौड़ी का भी नहीं हैं। प्र की प्राप्ति का यही सर्वोत्तम उपाय है--'मामेकं शरणं व्रज।'

अपने स्वार्थ के लिये प्रार्थना करना उचित नहीं। हाँ, दूसरों के कल्याण के लिए प्रार्थना करना उत्तम है। इससे प्रभु प्रसन्न होते हैं।

एकान्त में बैठकर मन को शिथिल कर दीजिये। नेत्र मूंद लीजिये। विरोधी विचारों को हटा दीजिये। प्रार्थना पर अपने चित्त को बार-बार लगाइये। ज्यों-ज्यों आपका सम्बन्ध परमात्मा के साथ अधिक-अधिक जुटता जायगा, त्यों-यों आप के रोम--रोम में पवित्रता का संचार होगा। फिर प्रार्थना प्रारम्भ कीजिये। विश्वास-सिञ्चित प्रार्थना से तुरन्त ही लाभ होगा। प्रार्थना सुन्दर, श्रद्धा, और विश्वासयुक्त होनी चाहिये। प्रभु में प्रीति-प्रतीति होनी चाहिये और एक उनके सिवा प्रार्थी की कोई दूसरी गति नहीं होनी चाहिये। श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदास जी ने कितना अच्छा कहा है—

सीतापति रघुनाथ जी तुम लगि मेरी दौर।
जैसे काग जहाज को सूझत ठौर न और॥

बाली को भगवान् श्री रामचन्द्र जी ने मारा और फटकारा भी; पर ज्योंही उसने कहा—

प्रभु अजहूं मैं पापी अंतकाल गति तोरि।

—भगवान के हृदय में करुणा का सागर उमड़ पड़ा!

चीरहरण के अवसर पर सती द्रोपदी की प्रार्थना में प्रीति, प्रतीति और गति तीनों थीं। देखिये—

हाथ उठाय अनाथ नाथ सौं 'पाहि-पाहि, प्रभु पाहि' पुकारी।
तुलसी निरखि प्रतीति प्रीति गति आरत पाल कृपाल मुरारी।
बसन बेष राखी विसेष लखि बिरदावलि मूरति नर-नारी॥

इस प्रीति–प्रतीति–गति से युक्त प्रार्थना से अच्युत का भी आसन हिल गया। लेना पड़ा ग्यारहवाँ अवतार—वस्त्रावतार।

सभा सभासद निरखिपट, चपरि उठाई हाथ।
तुलसी कियो इगार बसनहौं बेष जदुनाथ ॥ दो० १६८

यह है अलौकिक चमत्कार सच्ची प्रार्थना का।

प्रार्थना रोगियों के लिए धन्वन्तरि है, असहायों का सहारा, निर्बलों का बल और अनाथों का आश्रयदाता माता–पिता है। संसार में ऐसी कोई वस्तु नहीं, जो प्रार्थना से प्राप्त न हो सके। पर सावधान! प्रभु से प्रार्थना करके फिर असार संसार की ही माँग कर बैठना बहुत ही अनुचित है। उनसे तो एक ही माँग होनी चाहिये—वह यह कि उनकी कृपा हमारे ऊपर सदा बनी रहे, उनके चरणाम्बुजों की दासता मिलती रहे. हमारी शक्तियां उन्हीं की दी हुई होने के कारण से उन्हीं की सेवा में सदा समर्पित रहें।

येनाहमेकोऽपि भवज्जनानां।
भूत्वानिषेवे तव पादपल्लवम् ॥ भा० ॥

———

भजन में सफलता क्यों नहीं मिलती ?

संसार में सारे अनर्थों (पतन) का मूल है—'विषयचिन्तन।' विषय-चिन्तन करने वाले मनुष्यों की बुद्धि धीरे-धीरे नष्ट हो जाती है जिसके फल-स्वरूप उनका सत्यानाश हो जाता है। इसके विपरीत भगवच्चिन्तन के बढ़ाने का अभ्यास करने वाले साधकों की दिन-दूनी और रात-चौगुनी उन्नति होती रहती है। ज्यों-ज्यों भगवच्चिन्तन बढ़ता है, त्यों-ही-त्यों उनके चित्त में शांति का स्रोत बहने लगता है। आनन्द की प्राप्ति होती है। इतना ही नहीं; वे नरसे नारायण हो जाते हैं। इसीलिए निरन्तर भगवान् के परम पवित्र नाम, रूप, लीला और धाम का चिन्तन क ते रहना बुद्धिमानों की बुद्धिमता है। भगवच्चिन्तन मानव-जीवन की अपूर्व सम्पत्ति है। कृपण के धन के समान इस सम्पत्ति को संभाल कर रखना चाहिये।

जो लोग व्यर्थ ही संसार का चिन्तन करते हैं, वे पापकर्मों से कभी बच नहीं सकते। चिन्ता उनका साथ कभी छोड़ती नहीं। वाद-विवाद बढ़ जाता है। अशान्ति बनी ही रहती है। राग-द्वेष आदि लुटेरे उनके हृदय-भवन के मालिक बन जाते हैं। संसार का चिन्तन सदा व्यर्थ जाता है। सार्थक तो वह होता ही नहीं। अमूल्य मानवता को व्यर्थ नष्ट करने का सुगम उपाय है—'संसार का चिन्तन'।

बहुत से साधक शिकायत किया करते हैं—'स्वामीजी, भजन तो वर्षों से करते आ रहे हैं पर लाभ तो कुछ भी नहीं होता। क्या कारण है ?' इसका सीधा उत्तर तो यह है कि भजन के बदले जो लाभ देखता रहता है वह तो बनिया ही है, जो इस हाथ से लेता है दूसरे हाथ से देता है। भाई ! भजन का फल तो भजन ही है। भगवान् के प्रति निरन्तर प्रेम बढता रहे और भजन भी निरन्तर होता रहे, यही तो लाभ की अवधि है। यदि आप कहें कि 'यह

भी तो नहीं होता' तो इससे सिद्ध होता है कि आपसे भजन बन ही नहीं रहा है। भजन के बदले भोगों का चिन्तन होता होगा भला, भगवान् का भजन थोड़ा बहुत बनता रहे और लाभ न हो, यह सरासर झूठी बात है। मनुष्य ज्यों–ज्यों भजन–साधन करता जाता है, त्यों–ही–त्यों सुख–शांति का अनुभव, संसार से विरक्ति और भगवान् के प्रति प्रेम बढ़ता जाता है।

जो संसार का चिन्तन करता है, वह भगवान् से वैसे ही दूर हटता जाता है, जैसे पूर्व की ओर जाने की इच्छा रखने वाला पश्चिम की ओर चल दें तो वह अपने निर्दिष्ट स्थान से दूर होता जाता है। अतः साधकों को सावधान रहना चाहिये कि संसार का चिन्तन धोखे में भी न होने पाये। स्मरण रखिये—मनुष्य जैसा चिन्तन करने लगता है, वैसा ही वह बन जाता है। जो विषयों का चिन्तन करता है, वह 'विषयरूप' और जो भगवचिन्तन करता है वह 'भगवद्‌रूप'।

भगवद् भक्तों का ही संग कीजिये। भक्ति-ग्रन्थों का अवलोकन करते रहिये भगवच्चर्चा कीजिये और सुनिए। विषयी पुरुषों का सङ्ग तो भूलकर भी नहीं करना चाहिये। विषय का संग भी दुःखदायी तो है ही, पर उतना ही नहीं है जितना विषयी का संग है। अतः दोनों के ही संग का त्याग कर देना कल्याणकारक है।

पुराणों में, अनेक उदाहरण मिलते हैं, जिनमें श्रेष्ठ साधकों का भी पतन होता पाया जाता है। महर्षि विश्वामित्र का नाम तो प्रसिद्ध ही है। सौभरि ऋषि की कथा भागवत के नवें स्कंध में है। सौभरि ऋषि जल में रह कर कठिन तप कर रहे थे। अनेक सिद्धियाँ भी उन्हें प्राप्त हो गयी थीं। पर विषय-दर्शन से वे भी तपस्या से च्युत हो गये हैं।

वर्तमान काल में कितने अच्छे-अच्छे साधक साधना से च्युत हो गये हैं। इसका प्रधान कारण है 'असावधानी'। कुछ दिनों तक साधना ठीक-ठीक चलती रही। जिन लोगों ने दर्शन किये उनकी श्रद्धा बढ़ने लगी। फिर क्या था, दर्शकों की भीड़ आने लगी। धीरे-धीरे चेला और चेलियों की संख्या भी

बढ़ गयी। मन ने धोखा देना शुरू कर दिया। सोचने लगे कि 'संसार बहुत बिगड़ रहा है। इसका सुधार करना चाहिये।' बस, 'साधक' से बन गये 'सुधारक'। रुपये, धन सम्पत्ति, मोटर-गाड़ियाँ, सेवक-सेविकायें और सुन्दर-सुन्दर भोग पदार्थों की अब कमी ही नहीं है। एक मन कहता है—'सावधान'। कहाँ जा रहे हो गिरने।' इतने में वही मन बदल जाता है—कहता है 'चलो भाई—त्याग तो भीतर से होना चाहिये। बाहर मन से भोगने में क्या दोष है। भोग पदार्थ तो भोगने के लिये ही भगवान् ने बना रखे हैं। हम नहीं भोगेंगे तो ये सब तो व्यर्थ ही बनाये गये। फिर भी, हम तो किसी से माँगते नहीं—यह तो हमारी तपस्या का ही फल स्वयं मिल रहा है। पहले तो कोई पूछता नहीं था पर अब तो हमारे भजन का प्रताप प्रकट हो गया है, तभी तो बड़े-बड़े जज, मजिस्ट्रेट, वकील-मुख्तार, डाक्टर-प्रोफेसर और सेठ-साहूकार हमारी सेवा में खड़े हैं।' यह है, साधक के पतन का मार्ग।

साधको! आप सदा सावधान रहें। मनके धोखे में कभी न आ जायँ। निरन्तर अपने लक्ष्य की ओर दृष्टि जमाकर रखे रहिये, जहाँ खतरा दिखाई पड़े, वहां से तुरन्त नौ-दो ग्यारह हो जाइये। थोड़ी-सी असावधानी भारी पतन का कारण हो सकती है। भजन में सफलता न मिलने का कारण है—(१) श्रद्धा-विश्वास की कमी, (२) भजन में निरुत्साह, (३) विषय-चिन्तन, (४) कुसंग, (५) सत्संग का अभाव और (६) दृढ़ निश्चय की कमी।

भजन में शीघ्र लाभ हो, इसके लिए तीन खास बातें चाहिये—(१) विषयों से तीव्र वैराग्य, (२) निरन्तर भगवच्चिन्तन और (३) सत्पुरुषों का संग। साधको को चाहिये कि वह अपने निश्चय को पर्वत की तरह दृढ़ रक्खें। मनसे भगवान् के नाम रूप, लीला और धाम का स्मरण करता रहे। जीभ से भगवन्नाम का जप करता रहे।

भगवान् परम अहेतु की कृपा तो सब पर है ही।

———

हम दुःखी क्यों हैं ?

हम रात दिन जी तोड़ परिश्रम करते हैं—चोटी का पसीना एड़ी तक बहा लेते हैं। यह क्यों ? केवल सुख के लिए मैं सुखी हो जाऊँ, मेरी स्त्री सुखी रहे, मेरा लड़का सुखी रहे, इत्यादि के लिए। दुःख को तो हम देखना भी नहीं चाहते। पर क्या सुख हमें इच्छानुसार मिल ही जाता है, अथवा क्या हम कभी दुःख से अपना पिण्ड छुड़ा सके हैं ? कभी नहीं। चाहते हैं सुख पर दुःख आकर घेर लेता है। नाना प्रकार की कामनाएँ मन में आती रहती हैं, उनके चिन्तन में ही रात-दिन एक कर देते हैं; पर उनमें से अधिकांश कामनाएँ मन में ही मिटकर रह जाती हैं। यदि हमारी सभी कामनाएँ पूरी हो जायं तो यह दुनियाँ और-की-और ही हो जाय।

उपनिषद् का वाक्य है कि जिस प्रकार अनन्त आकाश को चमड़े की तरह लपेट लेना असम्भव है, वैसे ही परमात्मा अथवा आत्मा के ज्ञान के विना दुःख का नाश असम्भव है। दुःख का नाश तो तभी सम्भव है, जब हम अपने स्वरूप को तत्व से जान लेंगे।

दुःख-सुख वास्तव में है क्या—यह जान लेना भी सुख की प्राप्ति में और दुःख को दूर करने में सहायक है। प्रायः हम कहा करते हैं कि दुःख-सुख प्रारब्ध का भोग है, इसलिए बिना भोगे यह दूर होने को नहीं। पुण्य का फल सुख और पाप का फल दुःख हमें भोगना ही पड़ेगा। पर विचार करने से यह बात जँचती नहीं। सुख-दुःख प्रारब्ध नहीं है—ये तो केवल अपने मन की मान्यताएँ हैं। प्रारब्ध तो केवल परिस्थिति को लाकर सामने उपस्थित कर देता है। पर उनमें दुःख या सुख मान लेना यह तो प्रारब्ध का नहीं मनका काम है। सुनते हैं कि नारदजी की माता मर गयी तो वे वहुत प्रसन्न हुए। वैसे ही नरसी भगत को भी अपने एकमात्र पुत्र की अचानक मृत्यु पर दुखी नहीं

हुए, किन्तु भगवान् की लीला को जानकर नाचने लगे। हम भी ऐसे ही कर सकते हैं। इस लेख के दीन लेखक ने अपनी आंखों से कितने ऐसे स्त्री-पुरुषों को देखा है, जो विकट से विकट परिस्थिति पड़ने पर भी मन में विकार नहीं उत्पन्न होने देते। अतः यह सिद्ध हो जाता है कि जिसको सुख-दुख का विवेक है, वही प्रतिकूल परिस्थिति में प्रसन्न रह सकता है। ऐसे पुरुष वास्तव में पूज्य हैं उन्हीं के लिए दुःख भी दास बन कर सुख के रूप में बदल जाता है।

जो भाग्यवादी हैं, उनको चाहिए कि प्रतिकूल तथा अनुकूल परिस्थिति में पूर्ण शान्त बने रहें, चिन्ता और भय को पास नहीं फटकने दें। जो होने को होगा वह तो होकर ही रहेगा और जो होने का नहीं, वह लाख उपाय करने पर भी नहीं होगा। फिर हम सिर क्यों फोड़ें। अपने कर्त्तव्य का पालन उचित रूप से करना चाहिये। फल तो कर्मानुसार मिलता रहेगा। अपने मन को ऐसा दृढ़ बना लीजिए कि वह पदार्थों के आने पर फूल न जाय और उनके चले जाने पर, उदास न हो। यही तो योग है। घर बैठे योगी बन जाइये। एक सन्त ने कितना सुन्दर कहा है—

आवत हर्ष न ऊपजै, जावत सोक न होय।
ऐसी रहनी जो रहै, घर में जोगी सोय॥

ऐसे ही यदि आप ईश्वर भक्त हैं तो जैसी परिस्थिति आ पड़े—अनुकूल चाहे प्रतिकूल, उसको आप प्रभु का प्रसाद समझ कर प्रसन्नतापूर्वक स्वागत करें। वे परम सुहृद् हैं, जो कुछ करते हैं, सब आपके हित के लिए ही। कोई भी माँ बाप अपनी सन्तान का अहित नहीं चाहता। फिर जो सारे जगत के पिता सर्वसामर्थ्यवान, भक्तवत्सल और स्वार्थ रहित हैं—वे अपने दास का अहित कैसे कर सकते हैं। वे तो पग-पग पर क्षण-क्षण में हमारे कल्याण के लिये ही सुख-दुख का नया-नया विधान बनाते रहते हैं वह भक्त नहीं जो भगवान् के दिये हुए परम प्रसाद—सुख-दुःख को स्वीकार करने के लिए तैयार न हो। भगवान् तो परम कृपा करके हमारे उत्थान के लिए ही सुख-दुःख भेजा करते हैं।

इस प्रकार से विचार करने पर सिद्ध हो जाता है कि ईश्वर की कृपा पर निर्भर रहने वाला भक्त तथा प्रारब्धवादी मनुष्य सुख-दुःख की परवाह नहीं करता। अतः दुःख भी उससे दूर ही भागता है। दुःख और मृत्यु—ये दोनों उन्हीं के पास दौड़ते हैं, जो इनसे भय खाता है। जरा अकड़ कर खड़े हो जाइये—तो दुःख भी दुम दबाकर भाग जायगा।

जो भी मनुष्य सुख चाहता हो, उसे संसार से कुछ भी लेने की आशा नहीं रखनी चाहिये। इस क्षणभंगुर तथा अनित्य संसार से मिल ही क्या सकता है। जो कुछ भी मिलेगा, उससे वियोग तो अवश्य होगा। और वियोग में ही दुःख निहित है। अतः सबकी सेवा तत्परतापूर्वक करते चले जाइये। पर उसके बदले में कुछ लीजिए नहीं तो आप देखेंगे कि प्रसन्नता आपके पास से कहीं जायगी नहीं। सभी आपसे प्रेम करेंगे तथा उनकी सद्भावना मिलते रहने से आपका जीवन सुखपूर्ण हो जायगा। काम क्रोध, लोभ—ये आपके अन्तःकरण से निकलकर नष्ट हो जायँगे और आपका हृदय प्रभु का मन्दिर बन जायगा। आप संसार के ऋण से मुक्त होकर कृतकृत्य हो जायँगे। सदा स्मरण रखिये—"प्रतिकूल परिस्थिति प्रभु का प्रसाद है।"

———

हमारा सच्चा बल

संसार के सब प्रकार के बल जिसके सामने परास्त हो जाते हैं, वह है परम प्रभु परमात्मा की कृपा का बल, उनकी दया का बल और उनके ऊपर विश्वास तथा भरोसे का बल।

भगवान् ही हमारे एकमात्र रक्षक हैं। वे ही हमारे माता-पिता और परम सुहृद् हैं—ऐसा दृढ़ विश्वास जिसके हृदय में हो गया है, उस परम भागवत के सामने संसार की सारी शक्तियाँ अपनी शक्ति खोकर हार मान लेती हैं। पाप-ताप-संताप और आसुरी सम्पत्तियाँ तो भय खाकर दूर से ही नमस्कार करके चली जाती हैं।

भगवान् हमारे हैं, हम उनके हैं, निरन्तर वे हमारे साथ ही हैं—वे हमारा साथ एक क्षण भी नहीं छोड़ते—ऐसा मानने वाला भक्त संसार के भय से सदा के लिए मुक्त ही है।

परम प्रभू में विश्वास एक ऐसा महान् बल है, जिसके द्वारा हम सारे विश्व में विजयी हो सकते हैं। इसी के द्वारा हम सारे सद्‌गुणों के भण्डार बन सकते हैं। यही नहीं, असम्भव को सम्भव कर देना भी विश्वास का ही चमत्कार है। संसार भर की अच्छाइयाँ, संसारभर का ऐश्वर्य तथा संसारभर का सुख-सौंदर्य हम प्राप्त कर सकते हैं—यदि हम पूर्ण विश्वासी हैं।

विश्वास ने ही द्रोपदी की प्रतिष्ठा की रक्षा की, विश्वास ने ही गजराज को ग्राह के चंगुल से बचाया। प्रह्लादजी के लिए आग का शीतल होना भी तो विश्वास का ही चमत्कारपूर्ण कार्य है विष को अमृत में, आग को जल में, मृत्यु को जीवन में; शत्रु को मित्र में, रंक को राजा में, निर्बल को बली में,

मूर्ख को विद्वान् में और लघु को महान् में परिवर्तन करने की शक्ति यदि है तो विश्वास में ही है ।

जो भगवान् के भरोसे का त्याग करके संसार के प्राणियों का भरोसा करता है और अपने बल कों भगवान् के बल से भिन्न मानता है, वह व्यभिचारी और असुर नहीं तो क्या है ?

सुमित्रानन्दन लक्ष्मण जी में जो सारे ब्रह्माण्ड को कन्दुक के समान उठा लेने और पृथ्वी पर पटक देने की शक्ति थी, वह वास्तव में भगवान् की ही थी । उन्हीं के प्रताप के भरोसे वे गरज रहे थे । सुनिये उन्हीं के शब्दों में:—

जौं तुम्हारि अनुशासन पावौं । कंदुक इव ब्रह्माण्ड उडावौं ।
काचे घट जिमि डारौं फोरी । सकउँ मेरु मूलक जिमि तोरी ।।
तव प्रताप महिमा भगवाना । को बापुरो पिनाक पुराना ।।
तोरौं छत्रक दण्ड जिमि तव प्रताप बल नाथ ।

बालितनय अङ्गद जी भगवान् राम के प्रताप के बल पर ही लङ्कापति रावण के दरबार में भी निर्भीक ही रहे । श्री रामजी के प्रताप के सुमिरन (स्मरण) करते ही उनमें इतना अपार बल आ गया कि लंका के करोडों महावीर निशाचर एक साथ मिलकर भी उनके चरण को टस से मस नहीं कर सके, यही तो सच्चा विश्वास और सच्ची निर्भरता है ।

तासु सभा रोप्यो चरन, जो तौल्यौ कैलास ।
स्वामी की महिमा कहौं, सेवक का विश्वास ।।

(दोहावली)

प्रभु प्रताप उर सहज असंका । रन बाँकुरा बालि सुत बंका ।।
राम प्रताप सुमिरि मन बैठ सभाँ सिरु नाइ ।।
समुझि रामप्रताप कपि कोपा । सभा माझपन करि पद रोपा ।

महावीर हनुमान्जी में इतनी शक्ति थी कि वे वीर लक्ष्मण (जो रणभूमि में मेघनाद के बाण से मूर्छित पड़े थे) की चिकित्सा के लिए चन्द्रमा

को निचोड़कर अमृत ला सकते थे , भगवान् भुवन-भास्कर को बाँध कर राहु को उनके पहरा के लिये बैठा सकते थे, जिससे उनका उदय होना ही असम्भव हो जाय। यहाँ तक कि देवताओं के चिकित्सक अश्विनी कुमार को पकड़ लाना, पाताल से अमृतकुण्ड को उठा लाना—कहाँ तक कहा जाय मृत्यु तक को भी चूहे की तरह पटक कर मार देना, उनके लिये साधारण खेल था। पर यह सभी कार्य वे कर सकते थे केवल भगवान् के बल पर ही।

तुम्हारी कृपा प्रताप तुम्हारेहि नेकु विलंबु न लावौं।
(गी० सु० का०)

भगवान् रामजी ने पूछा—"बेटा हनुमान ! चार सौ कोस के समुद्र को लाँघ कर जाना और आना तथा लङ्का में आग लगाकर उसको स्वाहा कर देना--तुम्हारे लिये कैसे सम्भव हुआ ?" निरभिमान हनुमान् जी बोले—

प्रभु मुंदरी उस पार लैं, चूड़ामणि इस पार।
सीय विरह लंका जली, सो सब कृपा तुम्हार॥

वाह रे सच्चा विश्वासी।

निषादराज की सेना महामना भरत जी से युद्ध करने को तैयार है और निश्चय है कि श्रीराम के प्रताप से वह अयोध्या की सारी सेना को परास्त कर सकती है।

राम प्रताप नाथ बल तोरे। करहिं कटकु बिनु भट बिनु घोरे॥

संसार में सच्चे विश्वासी जो भगवान् के भरोसे ही जीते हैं, वे ही वास्तव में भगवान् के अनन्य भक्त हैं, जिनके पवित्र दर्शन से ही संसार का कल्याण होता रहता है। विश्वास ही वास्तव में सच्चा भजन है जो पाहन से भी परमात्मा को प्रकट कर देता है।

भगवान् सबको सद्बुद्धि प्रदान करें।

———

दु:ख का स्वागत कीजिये

यदि संसार के किसी भोग–पदार्थ में सुख होता तो मनुष्य सदा ही सुख की दासता में बँधा रहता। अतः भगवान् की यह बड़ी कृपा है कि सुख का कहीं अस्तित्व ही नहीं है। सुख के संयोग के साथ ही दु:ख लगा रहता है। जब हम सुखकी प्रतीति में ही भगवान् को भूल जाते हैं, तब वे दयालु भगवान् हमारे उस सुखाभास को भी छीन लेते हैं और हम पूर्ण दु:खी हो जाते हैं। दु:ख के आते ही हम उस दु:खहारी भगवान् को दीनतापूर्ण स्वर से पुकारने लगते हैं। बस, यहीं से हम वास्तविक आनन्द की खोज में लग जाते हैं। धन्य हैं दु:ख हारी भगवान्।

यदि संयोग में वियोग नहीं होता और वस्तुएं परिवर्तनशील नहीं होती एवं दु:ख अपने–ही–आप नहीं आता होता तो हम सुख के दास बनकर जड़ता, शक्तिहीनता और पराधीनता से मुक्त कभी नहीं हो सकते। दु:ख ही हमें दु:ख से मुक्त करा कर आनन्द साम्राज्य की ओर ले जाता है। अतः दु:ख का हार्दिक स्वागत करना चाहिए।

यदि दु:ख की ऐसी महिमा है तो फिर हम इससे घबराते क्यों हैं? इसका उत्तर तो यही है कि हम या तो दु:ख की महिमा जानते ही नहीं अथवा हम भगवान् के मङ्गलमय विधान से पूर्ण अपरिचित हैं। प्रभु से प्रेरित जो कुछ भी क्रियायें होती हैं, वे सब पूर्णतया मङ्गल से ओत–प्रोत हैं, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। यह तो हमारा ही अविवेक है, जिसके कारण हम दु:ख में अपना मङ्गल नहीं देख पाते।

संसार में विवेकी वही पुरुष कहलाता है, जो सुख और दुःख दोनों का सदुपयोग करता है। सुख में उदार होना और दुःख में त्याग करना ही सुख-दुःख का सदुपयोग करना है। त्यागी ही शांति जनक है। जो भगवान के मङ्गलमय विधान को स्वीकार कर लेता है, वही सदा निश्चित और निर्भीक रहता है।

जो पुरुष सुख-दुःख का सदुपयोग नहीं करता, वहीं अवनति की ओर जाता है। सुख का सदुपयोग न करने से सुख छीन लिया जाता है और दुःख का सदुपयोग न करने से दुःख बढ़ जाता है—यह प्राकृतिक नियम है।

जो अविवेकी पुरुष हैं, वे सुख से तो रांग करते हैं और दुःख से द्वेष ये राग-द्वेष ही पुरुष के पतन के मूल हैं। अतः सबका हितचाहने वाले दुःख हारी भगवान् पतन से बचाने के लिये ही प्रतिकूल परिस्थिति उपस्थित कर देते हैं, जिसके सदुपयोग में ही मानव-मात्र का कल्याण निहित है।

जो अविवेकी हैं वे दूसरों को अपने दुःख का कारण बताते हैं; जिनमें विवेक है, वे तो दुःख को भगवान् का प्रसाद समझ कर सिर पर धारण करते हैं।

संसार में जितने भी महापुरुष हो गये हैं, वे सभी प्रतिकूल परि-स्थितियों को पाकर ही उन्नत हुए हैं। विश्वास न हो तो इतिहास के पन्ने उलट कर देख लीजिये।

नल-दमयन्ती और पाँचों पाण्डवों की कथा संसार जानता है। आज भी ऐसे-ऐसे महापुरुष वर्तमान हैं, जिनका जीवन दुःख और संकट से ही ओत-प्रोत रहा है। जैसे आग स्वर्ण को तपाकर शुद्ध कर देती है, वैसे ही दुःख मनुष्य को सब प्रकार से शुद्ध करके उसे समाज में चमका देता है। दुःख को

सहर्ष स्वीकार कर लेना ही परम तप है। जो स्वेच्छा से तप नहीं चाहता, उसे भगवान् जबर्दस्ती दुःख देकर तपाते हैं दुःख हमें त्याग की ओर ले जाता है। यही नहीं, भगवान् की शरण भी तो हम दुःख से घबराकर ही लेते हैं। दुःख से दबकर जब हम दुःखहारी भगवान् की शरण हो जाते हैं तब हमारी सारी बाधाएँ दूर हो जाती हैं। तभी तो श्रीमद्गोस्वामीजी लिखते हैं—

सुखी मीन जे नीर अगाधा। जिमि हरि सरन न एकउ बाधा।

माता कुन्ती ने इसलिए भगवान् से दुःख ही माँगा था—

विपदः सन्तु व शश्वत्

महात्मा कबीरदासजी भी दुःख की ही सराहना करते है–

बलिहारी वा दुःख को, जो पल-पल नाम रटाय।

बोलो दुःखहारी भगवान् की जय।

———

आत्मविकास के मार्ग

उद्धरेदात्मनाऽऽत्मानं नात्मानमवसादयेत ।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ।।
(गीता ६ । ५)

यह मानव-जीवन अत्यन्त ही दुर्लभ है। इसको पाकर अति शीघ्र अपने आत्म विकास के मार्ग पर लग जाना चाहिये। इसमें आलस्य तथा दीर्घसूत्रता करने से पछताना ही पड़ेगा। संसार में सर्वश्रेष्ठ वीर वही है जिसने मन इन्द्रियों पर पूर्ण विजय प्राप्त करके आत्मविकास कर लिया है तथा जो औरों को भी इस मार्ग पर आरूढ़ होने के लिए प्रोत्साहित करता है।

जो आत्मविकास के यत्न में लगे हुए हैं, उनको चाहिये कि सदा सावधान रहा करें। जरा-सी चूक होने पर पाँव फिसल जा सकता है। आज-कल बहुत से साधक सर्वप्रथम अपना सर्वस्व त्याग करके इस पथ पर आरूढ़ तो हो जाते है पर थोड़े ही साधन के बाद वे लग जाते हैं दूसरों को सुधारने में। वे अपने सुधार की बात तो भूल ही जाते हैं। अपनी कमी की ओर उनकी दृष्टि नहीं जाती। दूसरों के दोषों को ही वे देखने लगते हैं। स्वयं दोषी होकर दूसरों के दोषों को दूर करने का प्रयत्न करना वैसा ही है जैसा अन्धा होकर अन्धे को राह बताना।

यदि आप सच्ची लगन के साथ आत्मविकास करने की इच्छा रखते हैं तो सबसे पहले परदोष-दर्शन का त्याग कर दीजिये। सदा स्मरण रखना चाहियें कि दूसरे व्यक्तियों में जो दोष दिखाई पड़ते हैं, वे सब दोष अपने में ही रहने के कारण दिखायी पड़ते हैं। जो मनुष्य जैसा होता है, उसके लिए

संसार भी वैसा ही जान पड़ता है। दूसरों की आलोचना करने में जो समय व्यतीत किया जाता है, वह समय यदि आत्मनिरीक्षण में लगाया जाय तो महान् लाभ हो सकता है। समय की बहुमूल्यता की दृष्टि से परदोष-दर्शन का साधक के जीवन में कोई स्थान नहीं है।

सभी परिस्थितियों को अनुकूल दृष्टि से देखना परमावश्यक है। अप्राप्त परिस्थिति की चाहना त्याग कर देना चाहिये, अन्यथा व्यर्थ चिन्तन बना रहेगा, जिससे अशान्ति तो रहेगी ही, साथ-साथ समय का दुरुपयोग भी होता रहेगा। व्यर्थ चिन्तन और व्यर्थ चेष्टा ही प्रमाद का स्वरूप है, जो उन्नति के मार्ग में बहुत बड़ा विघ्न है। प्राप्त परिस्थिति का सदा सावधानी के साथ सदुपयोग करते रहना चाहिये। किसी सन्त के कथानुसार कवि, तत्वदर्शी और संत ये तीनों सभी वस्तुओं को अपने अनुकूल और पवित्र देखते हैं। सभी घटनाओं को लाभकारी, सभी समय शुभ और सभी वस्तु, पदार्थ, व्यक्ति को ईश्वर स्वरूप देखते हैं। इमर्सन साहब ने यही कहा है—

"To the poet. to the philosopher and to the saint. all things are friendly and secret, all events profitable all day holy and all men divine."

जब कभी आपस में चर्चा करनी हो तो उपादेय की चर्चा करनी चाहिये। हेयका तो सर्वथा त्याग करना ही अच्छा है। मनुष्य जो कुछ भी वचन बोलता है अथवा किसी से श्रवण करता है, उसका उसके जीवन पर बहुत असर पड़ता है। अतः बोलने और सुनने के समय सदा सावधान रहना चाहिए। निरन्तर नये-नये सद्विचारों का निर्माण करते रहना चाहिये, जिससे कुत्सित विचार कभी मन में उठें ही नहीं। अनुचित विचारों से सदा उदासीन रहना चाहिये। सद्ग्रन्थों का स्वाध्याय करना अच्छा है। स्वार्थ त्याग करके लोक-सेवा के कार्यों में रहने से मनको व्यर्थ चिन्तन का अवसर ही नहीं

मिलता है । 'खाली मन भूतका डेरा' प्रसिद्ध ही है। अतः अपने मन को निरन्तर सद्विचार तथा सत्कर्मों के द्वारा कसे रखना चाहिये।

निरन्तर शांति और संतोष का विचार करते रहना चाहिये। शांति का विचार शांति उत्पन्न करता है। सन्तोष के विचार से उत्तम सुख मिलता है। 'सन्तोषादनुत्तमसुखलाभः' सन्तोष काम को खा जाता है। काम के नाश से ही शांति की प्राप्ति होती है। श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदास जी लिखते हैं—

बैठे सोह कामरिपु कैसे। धरे शरीर सांत रस जैसे॥

श्री शंकर भगवान काम को मार मारकर ही शान्तिस्वरूप हो सके हैं। वैसे ही जो कामना का नाश कर सकेगा, वही शांति पा सकता है— दूसरा नहीं।

इस प्रकार यदि आप अपना सुधार करना चाहते हैं—अथवा आत्मोन्नति की ऊँची चोटी पर चढ़ना चाहते हैं तो अपने सुधार में ही तत्पर हो जाना चाहिये। अपने सुधार से अपना लाभ तो होगा ही, संसार को भी स्वतः लाभ हो जायगा।

भगवान् सबको सुबुद्धि प्रदान करें।

———

सम्राट बनकर सम्राट से मिलो

भगवान् श्री कृष्ण गीता का उपदेश करते हुये अर्जुन से बार-बार कामनाओं को ही त्यागने की आज्ञा देते हैं। गीता की भूमिका रूप प्रथम अध्याय को छोड़कर सभी अध्यायों में कामना त्याग का महत्व, सिद्ध पुरुषों में कामना का अभाव तथा कामना को पूर्ण रूप से त्यागने का आदेश मिलता है। वास्तव में जब तक भोग कामना रूपिणी पिशाचिनी हृदय में निवास करती है तब तक भगवत्प्राप्ति रूप परम शान्ति कदापि नहीं मिल सकती।

....

भगवान् भक्ति से मिलते हैं। भक्ति ज्ञान का फल है। ज्ञान विचार से होता है। विचार शुद्धान्तःकरण में ही स्थिर हो सकता है। जैसे एक ही बर्तन में दूध और मट्ठा नहीं रख सकते, वैसे ही विचार और भोगों की कामना ये दोनों अन्तःकरण में एक साथ नहीं रह सकते।

... ...

यह कामना ही साधक को साधना से हटा देती है। पिशाचिनी जो ठहरी। जैसे डाकू पथिकों को अकेले पाकर लूट लेता है, वैसे ही साधकों को लूट लेती है। यही हम कों निश्चिन्त तथा निर्भय नहीं होने देती। निश्चिन्त तथा निर्भीक तो कोई त्यागी पुरुष हो सकता है। त्यागी वह है जो संसार में कुछ भी अपना नहीं मानता। ईश्वर के राज्य में रहकर जो ईश्वर के पदार्थों को अपना मान लेता है वह तो चोर है। चोर भय रहित कैसे हो सकता है? क्योंकि उसकी दाढ़ी में तो तिनका लगा ही रहता है।

....

सदा आत्म स्वरूप में रमण करना और किसी बाहरी वस्तु की इच्छा न करना ही सुखी होने का अमोघ उपाय है। पहले बुरी इच्छा को सदिच्छा के द्वारा त्याग कर देना चाहिये। फिर सदिच्छाओं को भी भगवान् को अर्पण कर देना चाहियें। इस प्रकार से इच्छा मात्र के त्याग से ही परम शांति की प्राप्ति सम्भव है। अप्राप्त वस्तु की इच्छा न करना और प्राप्त वस्तु को स्वार्थ में न लगाकर जन-सेवा अथवा परमार्थ में लगाना ही इच्छा को पूर्ण दमन करने के उपाय हैं।

... .

जो साधक कामनाओं का दास बनकर भगवान् श्री राम का दास बनना चाहता है वह मानों बरसती हुई बूँदों को पकड़ कर आकाश पर चढ़ना चाहता है। काम के राज्य में रहकर राम-राज्य का सुख पाना असम्भव है। साधकों को निश्चय करना चाहिये कि वे जिस वस्तु का त्याग करते हैं वह वस्तु उनके पीछे-पीछे चला करती है। अतः कामना का दास नहीं बनना चाहिये।

... ...

यह तो हमारे प्रतिदिन के अनुभव की बात हैं कि जब हम प्रकाश की ओर दौड़ते हैं तो छाया हमारे पीछे-पीछे दौड़ती हैं। उसी प्रकार जब हम सांसारिक सुखों के पीछे दौड़ते हैं तब दुःख भी हमारे पीछे-पीछे दौड़ता है।

... ...

जब तक हम काम की प्रेरणा से संसार को बुलाते रहते हैं तबतक भगवान् नहीं आते। पर ज्योंही हम संसार को बुलाना छोड़ देंगे त्योंही भगवान् अविलम्ब हमारे पास पहुँच जायँगे।

... ...

जो पुरुष सर्वथा कामना रहित है, वही राजा है। वह तो निश्चय ही परम रंक है जिसके मन में सदा कामना बनी रहती है। रंक होकर राजा के पास जोने से वैसे ही अपमानित होना पड़ता है जैसे राजा द्रुपद के यहाँ द्विजोत्तम द्रोण का हुआ था। राजा होकर ही कोई राजा से मिल सकता है। रंक को कौन वहाँ तक पहुँचने देगा! दूर से ही दरवान दुरदुरा देते हैं। भगवान् तो सम्राटों के सम्राट हैं। उनसे मिलना चाहते हैं तो हमें स्वयं सर्वप्रथम सम्राट बन जाना चाहिये। सम्राट (बादशाह) की परिभाषा यह है :—

"चाह गई चिन्ता मिटी, मनुआँ बेपरवाह।
जिनको कछु न चाहिये, वे नर शाहँशाह॥"

... ...

यदि आप कहें कि गीता में तो भगवान् ने मांगने वाले भक्तों को भी श्रेष्ठ ही कहा है तो यह ठीक है। भगवान् ऐसे भक्तों को इच्छित वस्तु प्रदान कर अपना पिण्ड छुड़ा लेते हैं। जिस प्रकार एक राजा किसी कंगाल को कुछ देकर अपना पिण्ड छुड़ाता है। परन्तु भगवान् से जो कुछ भी नहीं लेता वह तो भगवान् को सदा ऋणी बना लेता है। देखते नहीं महावीर हनुमान् जी की पूजा घर-घर में होती है परन्तु सुग्रीव, अंगद तथा विभीषण की पूजा कौन करता है। भगवान् राम अपने श्रीमुख से हनुमान्‌जी से कहते हैं :—

सुन सुत तोहि उरिन मैं नाहीं।
देखेऊँ करि विचार मन माहीं॥

स्वामी रामतीर्थजी ने कितना अच्छा कहा है :—"जब तक तुम बादशाह नहीं बनोगे, बादशाह के पास नहीं बैठ सकते इच्छा-कामना की गन्ध तक उड़ा दो। जमकर बैठो त्याग के तख्त पर। धारण करो वैराग्य के मोती, पहन लो ज्ञान का मुकुट और वह तुम्हारे पास से कभी हिल जाय, तो मुझे बाँधलेना।"

———

अपनी कठिनाइयों को दूर कीजिए

आपके ऊपर जितनी कठिनाइयां आ पड़ी हैं सब पर विजय पा सकते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं। सन्देह भी कैसे। आप अंश किसके हैं ? "ईश्वर अंश जीव अविनासी।" परब्रह्म परमात्मा के सामने अथवा उसके सामने भी कोई पाप-ताप-संताप अथवा अंश कोई कठिनाइयाँ आ सकती हैं ? कभी नहीं।

जो कुछ भी कठिनाइयाँ आपके सामने हैं, वे इसलिए कि आप अपने में ईश्वर का बल रखते ही नहीं। आग्रह, अहंकार और अपने पुरुषार्थ के बल पर आप निर्भर रहते हैं। यही भारी भूल है। यहीं से कठिनाइयों को आप निमंत्रित करते रहते हैं। भौतिक पदार्थों के बल पर आपकी कठिनाइयां बढ़ेंगी ही, घटेंगी नहीं। आपमें तो उस परम प्रभु का बल होना चाहिये।

निर्बल होकर पुकारिये उस बलराम को और देखिये कि आपकी कठिनाइयां कहां जाती है। जल्दी से जल्दी भौतिक बल के भरोसे का त्याग कीजिये। और कीजिये भरोसा उस परम प्रभु की कृपा का जिनका यह वचन है।

सुनु मुनि तोहि कहउँ सहरोसा।
भजहिं जे मोहि तजि सकल भरोसा॥
करउँ सदा तिन्ह कै रखवारी।
जिमि बालक राखइ महतारी॥

बस छोटा बालक बन जाइये। बालक केवल रोना ही जानता है। न तो वह कोई चीज मांगता है और न किसी चीज के लिये कोई प्रयत्न ही करता। उसका तो रोना ही रोना है, यही उसका बल है।

'बालानां रोदनं बलम् ।'

बालक को रोते हुए देखकर ही माता उसके अभाव को जान जाती है और उसकी पूर्त्ति भी कर देती है। सर्दी लगने के कारण बालक रो रहा है पर वह यह नहीं कहता है "मां! कम्बल ओढ़ा दे" पर माता झट से उसके अभाव को ताड़ लेती है और उसके ऊपर डाल देती है गर्म कपड़ा। यही तो सच्ची निर्भरता है।

भगवान् सर्वज्ञ होने के साथ ही सर्वशक्तिमान् भी हैं। वे सब कुछ क्षण भर में ही कर सकते हैं। ऐसा कोई अभाव नहीं जिसकी पूर्ति वे नहीं कर सकें और ऐसी कोई कठिनाई नहीं जिसको वे दूर न कर सकें। तब करते क्यों नहीं? यही हमारी भूल है। हम रोते नहीं जिस प्रकार एक बच्चा रोता है। जब-जब हमारे ऊपर संकट पड़ते हैं अथवा जब-जब हम अभावग्रस्त हो जाते हैं तब-तब हम सीधे भगवान् के ऊपर हुकूमत करने लग जाते हैं। हम कहते हैं—"प्रभो, अमुक वस्तु हमें भेज दो। हमारा अमुक काम पूरा कर दो" इत्यादि। भगवान् में विश्वास नहीं होने के कारण ही ऐसा कह दिया करते हैं। हम यह नहीं जानते कि भगवान् सर्वज्ञ हैं अतः हमारे अभाव से पूर्णतया परिचित हैं। हमारी भलाई किसमें है यह तो वही जानते हैं। भगवान् शंकर विवाह करना नहीं चाहते थे पर श्री रामजी ने हठ करके उनका विवाह श्री पार्वतीजी के साथ करवाया। पर जब श्री नारदजी के मन में विवाह करने की पूर्ण इच्छा हुई तो भगवान् ने उनका मुंह बन्दर-सा बना करके उन्हें विवाह से वंचित कर दिया! आप अपनी कठिनाइयों को भगवान् के सामने रख दीजिये। उनसे प्रीति और प्रतीति-पूर्वक प्रार्थना कीजिये। प्रार्थना चाहे किसी भाषा तथा कैसी भी भाषा में क्यों न हो। सुसंस्कृत वाणी अथवा सुललित शब्द वे नहीं चाहते। वे तो केवल आपका हृदय टटोलते हैं। हृदय में पूर्ण विश्वास और सच्ची निर्भरता हो। भगवान् जो कुछ करेंगे वह मेरे लिये कल्याणकारक होगा। क्योंकि उनका

सभी विधान मंगलमय है, ऐसा दृढ़ निश्चय होना चाहिये। अपना अभाव अपनी कठिनाई तथा अपनी समस्याओं को उनके सामने रखकर पूर्ण निश्चित हो जाइये, उनकी कृपा की राह देखते रहिये। सर्वत्र ही सभी वस्तुओं में तथा सभी घटनाओं में उनकी लीला का ही दर्शन कीजिये। उन्हीं के लिए अपने तन और मन को सौंप दीजिये। फिर क्या है ? आप सदा के लिए सुखी और शान्त हो जायेंगे। आपकी कठिनाइयाँ दूर हो जायगी। आपकी समस्याएं हल हो जायंगी और आप उनकी अहेतु की कृपा को पाकर कृतकृत्य हो जायगे। गीताजी में उनका वचन है :

"मच्चित: सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि"

स्मरण रखिये भगवान् की कृपा का अनुभव उसी को होता है जो संसार से कुछ भी आशा नहीं करता।

भगवान् की शरण में सभी के दुःख दूर हुए, होंगे और होते हैं। अतः हम उनकी शरण लें।

श्रवण सुजस सुनि आयउं, प्रभु भंजन भवभीर।
त्राहि त्राहि आरति हरन, सरन सुखद रघुवीर॥ रा०च०मा०

———

प्रतिकूल परिस्थिति प्रभु का प्रसाद है

महापुरुषों का यह स्वतः स्वभाव होता है कि अप्राप्त परिस्थिति, वस्तु अथवा व्यक्ति की इच्छा नहीं करते हैं वल्कि जो कुछ उन्हें प्राप्त है उसका सदुपयोग अवश्य करते हैं। सदुपयोग ही करते हैं पर उसमें ममता नहीं। वे भूत भविष्य का विचार नहीं करते पर वर्तमान का आदर अवश्य करते हैं। यह तो अटल नियम है ही कि जो वर्तमान का सदुपयोग करते हैं उनके भविष्य का सदुपयोग हो ही जाता है क्योंकि भविष्य ही तो वर्तमान होकर आता है और पुनः वही भूत बन जाता है। जब कभी प्रतिकूल परिस्थिति उनके जीवन में आती है, वे उसमें जाग्रत हो जाते हैं और अनुकूल परिस्थिति में उदार बन जाते हैं। यही तो परिस्थितियों का सदुपयोग है। समय का सदुपयोग तो वे पूर्णतया करते हैं ही। वे यह जानते हैं कि समय से बढ़कर उनके पास कोई भी वस्तु प्राप्त नहीं है। समय का सदुपयोग ही तो जीवन के सदुपयोग अथवा जीवन साफल्य की कुन्जी है। व्यर्थ चिन्तन और व्यर्थ चेष्टा का उनके जीवन में कहीं स्थान नहीं है। क्योंकि इससे समय के दुरुपयोग होने के सिवा कोई लाभ नहीं है। सुख-दुःख केवल मन की कल्पना है, यह है कुछ नहीं—यह उनका निश्चय रहता है। अपने प्रभुको क्षणमात्र भी भूलजाना उनके लिए भारी विपत्ति है, उनका स्मरण निरन्तर बने रहना ही महान् सुख है।

'विपद् विस्मरणं विष्णोः सम्पद् नारायणस्मृतिः ॥'
'कह हनुमन्त विपति प्रभु सोई। जब तव सुमिरन भजन न होई ॥'

पर जो अविवेकी मानव हैं उनकी बात निराली है। वे दिन-रात अप्राप्त परिस्थिति, वस्तु तथा व्यक्ति के पाने की चिन्ता में ही मग्न रहते हैं। जो कुछ भी उन्हें प्राप्त है उसका आदर तथा सदुपयोग करना तो दूर

रहा उल्टे उसका अनादर और दुरुपयोग कर वैठते हैं। भविष्य का सुधार चाहते हैं पर वर्तमान का दुरुपयोग करके नष्ट कर रहे हैं। उनके जीवन में समय का कुछ मूल्य ही नहीं है। सारा जीवन व्यर्थ चिंतन तथा व्यर्थ चेष्टाओं में लगा रहता है। फलतः उनके जीवन का सदुपयोग हो नहीं पाता। वे अप्राप्त सुख की आशा तथा प्राप्त दुःख की निवृत्ति में लगे रहते हैं। चाहते हैं मनके अनुकूल सुख पर आ जाता है भारी संकट। परिणाम यह होता है कि उनके जीवन में नीरसता स्थान जमा लेती है। उनके जीवन का विकास रुक जाता है। भोग के वदले रोग, सुख के वदले दुःख और शांति के बदले संताप ही उनको प्राप्त होता है। यदि उनके जीवन में कभी सुख-भोग का अवसर प्राप्त भी हो जाता तो अभिमान से वे चूर रहते हैं पर कभी दुःख आ टपकता है तो वे उद्विग्न होकर सारी शांति को खो बैठते हैं। उस दुःख के चिन्तन और उसको दूर करने के लिए असफल प्रयत्न में ही वे सारा जीवन गंवा देते हैं।

वास्तव में विचार करके देखा जाय तो हमारे जीवन में जो प्रतिकूलता आती है वह केवल हमें जाग्रत करने के लिए। जव कभी हम अनुकूलता में राग कर वैठते हैं, तथा सुख भोग के नशे में आकर अपने भगवान् तक को भूल जाते हैं, तो यह प्रतिकूलता हमें सचेत करने के लिए प्रभु का सन्देश लेकर पहुँच जाती है। यह प्रभु का प्रसाद है और आती है उन्हीं की ओर आकृष्ट करने के लिए। तभी तो कुन्ती माता और कबीरदासजी इसी की याचना करते हैं—

'बलिहारी या दुःख की पल-पल नाम रटाय।'

—कबीर

'विपदः सन्तु नः शश्वत्तत्रतत्र जगद्‌गुरो।' —कुन्ती

संसार में जितने महापुरुष हुये हैं, आप उनके जीवन चरित्र पर विचार कीजिये तो ज्ञात होगा कि प्रातः सबके उत्थान का कारण यह विपदा-

माता ही है। इसी की गोदी में पलकर वे उतने उन्नत हो सके। कुन्ती और द्रौपदी, सीता और सावित्री आज प्रातःस्मरणीया जानी जाती हैं। भगवान् राम और राजा हरिश्चन्द्र के नाम—ग्रहण मात्र से आज हम पवित्र होते हैं। क्यों? इन्होंने भारी से भारी विपत्ति को सहर्ष स्वीकार करके धर्म का पालन किया है राक्षसराज विभीषण को भगवान् श्रीराम के सन्मुख किसने किया? प्रतिकूल परिस्थिति ने। ज्येष्ठ भाई रावण ने लातमार विभीषण को नगर से निकाल दिया। फिर भी विभीषण भाई के विरुद्ध चूँ तक नहीं बल्कि मार खाते भी उसके हित के लिए ही बार-बार उपदेश करते रहे। जब रावण ने राक्षसों को बुलाकर समझाया कि खबरदार! विभीषण इस नगर में रहने न पावे तो वे (विभीषण) आकाश-मार्ग से चलने लगे। पहले माता की आज्ञा लेने के लिए उनके पास पहुँच कर प्रणाम किया। माता ने सब हालत जानकर 'व्यामिश्रेणेव वाक्येन' समझाया।

इहाँ ते विमुख भये, रामकी सरन गये,
भलो नेकु, लोक राखे निपट निकाई है॥

गी० सु० उ०

विभीषण को सन्तोष न हुआ तो माता से विदाई लेकर अपने भाई कुवेर से परामर्श प्राप्त करने के लिए गये। वहीं पर भगवान् शंकर मिल गये। शंकरजी ने सब हालत जानकर कहा—'विभीषण! तुम भगवान् राम की शरण जाओ, इसमें कोई शुभ दिन देखने की आवश्यकता नहीं है।'

तहँइ मिले महेश, दियो हित उपदेश,
राम की सरन जाहि, सुदिनु न हेरै॥ गी०सु०उ०

विभीषण की प्रसन्नता की सीमा नहीं रही। वे आगे वढ़े तो अच्छे अच्छे सगुन होने लगे। लोवा-छेमकरी के दर्शन भी हुए। सभी मंगल-सगुन मना रहे थे।

"लाभ लाभ लोवा कहत छेमकरी कह छेम ।
चलत विभीषण सगुन लखि, तुलसी पुलकत प्रेम ॥"

भक्तवत्सल भगवान् भक्त की बाट जोह रहे थे। विभीषण के ग्राने का समाचार सुनते ही तुरन्त ग्रापने ग्रनुज को उसकी ग्रगवानी के लिए हनुमानजी के साथ भेजा। धन्य भक्त-वत्सलता ! वे दोनों विभीषण के पास पहुँचे ।

'चले लेन लषन हनुमान हैं ।'
मिले मुदित बूझि कुशल परस्पर सकुचत करी सनमान हैं ।
भयो रजायसु पाँव धारिये, बोलत कृपानिधान हैं ॥ गी०सु०३५

ज्योंही विभीषण प्रभु को दण्डवत् करने लगे कि भगवान् ने उठकर उन्हें हृदय से लगा लिया ग्रौर सागर-जल से तिलक करके उसी समय उनको लंका का राजा घोषित कर दिया ।

'दियो तिलक लंकेस कहि राम गरीब निवाज'

विपत्ति ग्रथवा प्रतिकूलता को सहर्ष स्वीकार करने का फल मीठा ही होता है। भगवान् का वह ग्रतिशय प्रिय हो जाता है, जो उनके इस प्रसाद को ग्रपनाता है। प्रतिकूलता ने विभीषण को निहाल कर दिया ।

———

जीवन को सार्थक बनाइये

यह मानव-शरीर बड़ा ही महत्व का है। इसको प्रमाद में लगा देना उचित नहीं। व्यर्थ चिंतन और व्यर्थ चेष्टा को ही प्रमाद कहते हैं। अप्राप्त वस्तु, परिस्थिति और व्यक्ति का चिंतन करते रहना और जो नहीं करने योग्य है, उसको करना ही व्यर्थ चिंतन और व्यर्थ चेष्टा है। इसके बदले जो कुछ प्राप्त है उसका सदुपयोग और जो करने योग्य है वही करने से व्यर्थ चिंतन और व्यर्थ चेष्टा नहीं होगी, बल्कि सार्थक चिंतन और सार्थक चेष्टा होती रहेगी। सार्थक चिंतन करते-करते सार्थक चेष्टा भी अपने आप होने लगेगी। और तभी जीवन सार्थक हो सकेगा।

जो कुछ प्राप्त है उससे ममता कदापि मत कीजिए। ममता करने से सुख की आशा होने लगेगी। सुख की आशा ही देहाभिमान को पुष्ट करती है। अभिमान आपको भगवान् से भिन्न कर देगा। अहं की पुष्टि भी सुख की आशा करने से ही होती है और यही 'अहं' भगवान् से आपको दूर करता है। प्राप्त वस्तुओं का सदुपयोग करते रहिये। सेवा में लगा दीजियेगा उस वस्तु से आपका राग छूट जायगा। राग का अभाव ही विराग है। वस्तुओं से वैराग्य होते ही आपका मन स्थिर हो जायगा अर्थात् आपको शांति मिल जायगी।

सेवा उसका नाम नहीं है जिसमें कुछ लेना होता है। यदि सुख की आशा से सेवा की जायगी तो उस सेवा से आपको भोग मिल जायगा। फिर उस भोग में राग हो जायगा जो बन्धन का कारण है। अतः सेवा में सब कुछ देना ही देना होता है। देना ही सीखिये, लेना नहीं। देने के बदले जो लेता है वह व्यापारी है। भक्त प्रह्लादजी ने यही कहा है भगवान से —

यस्त आशिष आशास्ते न स भृत्यः स वै वणिक् ॥

संसार में तीन प्रकार के मनुष्य हैं। (१) उत्तम (२) मध्यम और (३) नीच, जो देते ही हैं लेते नहीं वे उत्तम हैं और उन्हीं को देवता कहते हैं। जो देते हैं और बदले में लेते भी हैं वे मध्यम हैं और उन्हीं को मनुष्य कहते हैं। और जो देते तो हैं नहीं केवल लेते ही रहते हैं वे नीच हैं, जो दानव भी कहलाते हैं। चौथे प्रकार के मनुष्य भी हैं जो संसार के सामने अपना हाथ फैलाते रहते हैं। ये मंगन मनुष्य मुर्दा के समान हैं। ये जीवन रहित हैं।

रहिमन वे नर मर चुके, जो कहुँ मांगन जाहि ।
उनते पहले वे मुए, जिन मुख निकसत नाहि ॥

संसार उसी को चाहता है जो संसार से कभी भी कुछ नहीं चाहता है। वस्तुएँ भी उसी को मिलती हैं जो उन वस्तुओं से मुँह फेर लेता है। चाहने वालों से सभी दूर भागते हैं। अतः आप संसार में दाता बनकर रहिये, मंगन बनकर मुर्दा मत बनिये। यदि आपके पास देने के लिये कुछ नहीं है तो भी आप सहानुभूतिपूर्ण मीठे-मीठे दो शब्द तो दे ही सकते हैं। बस, इन शब्दों के द्वारा ही कठोर पत्थर के समान हृदय वाले को भी पिघला सकते हैं। वचन बोलने में दरिद्रता क्यों होनी चाहिये।

"प्रियवाक्यप्रदानेन सर्वे तुष्यन्ति जन्तवः ।
तस्मात्तदेव वक्तव्यं वचने का दरिद्रता ॥"

बहुत से विद्यार्थी बी० ए०, एम० ए०, का सर्टिफिकेट लेकर जब विश्वविद्यालय से निकलते हैं तो वे शिकायत करते हैं कि उनको नौकरी नहीं मिलती है। दौड़ धूप करते-करते थक गए, घर का माल-असबाब बिक गया, घूस भी देते रहे पर फिर भी बेकारी सामने पिशाची बनकर खड़ी है। कोई-कोई तो निराश होकर विषपान करके अपना काम ही तमाम कर बैठते हैं।

पर यह सब कोरी मूर्खता है। नौकरी नहीं मिलती है—यह तो ठीक ही है। यह इसलिए नहीं मिलती है कि आप नौकरी के बदले कुछ लेना चाहते हैं। भाई लेने वाले को संसार में चाहता ही कौन है। आप लेने का सवाल(प्रश्न) ही छोड़ दीजिये। लगजाइये समाज की सेवा में। संसार में सब सेवक चाहते हैं। सेवक वह जो लेना चाहता ही नहीं। संसार में सेवा की कमी है। फिर आप विचार कीजिये, जिसको आप सेवा के द्वारा सुख पहुँचावेंगे क्या वह आपको भूखों मरने देगा ? कदापि नहीं। अतः आप सेवा को अपनाइये।

स्मरण रखिये आप में अपार शक्ति भरी हुई है। आप में आनन्द का समुद्र लहरा रहा है। भगवान् का वरद हस्त आपके मस्तक पर है, फिर चिन्ता, शोक, उदासी दरिद्रता आदि का आपके जीवन में कहीं स्थान नहीं है। आप निराश मत होइये। शुभ कामनाओं से हृदय को भर दीजिये। कुत्सित कामनाओं को निकाल बाहर कर दीजिये। हृदय से निराशा को हटा कर आशा का संचार कीजिये। प्रभु से रोकर प्रार्थना कीजिये। आपकी प्रीति, प्रतीति और गति को देखकर प्रभु आपकी प्रार्थना अवश्य सुनेंगे। रात को निद्रा आने के पूर्व और सोने से उठते ही प्रातःकाल निश्चय कीजिये कि परम शक्तिमान दयासागर प्रभु सदा आपके साथ रहते हैं। वही आपके पथप्रदर्शक हैं और उन्हीं की प्रेरणा से आपकी चेष्टाएँ हो रही हैं। सफलता निश्चित है। भगवान् सदा आपके साथ हैं इस बात को आप कभी मत भूलिये।

सदा सावधान रहिये कि मन में व्यर्थ चिन्तन न होने पावे और न शरीर से किसी व्यर्थ चेष्टा में लगे रहिये। आपका जीवन सफल हो जाएगा। सफलता की कुञ्जी है समय का सदुपयोग। यदि आप व्यर्थ चिन्तन और व्यर्थ चेष्टा को छोड़ देंगे तो सार्थक चिन्तन और सार्थक चेष्टा होते रहने से समय का सदुपयोग स्वतः होता रहेगा। श्री मद् गोस्वामी तुलसीदास के इस वचनामृत से कितना सन्तोष होता है :—

"बिगरी जनम अनेक की, सुधरै अबही आजु।
होहि राम कै नाम जपु, तुलसी तजि कुसमाजु॥"

———

सन्तोष से शान्ति

सारा संसार सुख की चाह करता है। दुःख तो किसी को चाहिये ही नहीं, पर होता है विपरीत ही। सुख भोगी तो कोई-कोई ही होते हैं। सभी दुःख की ज्वाला में ही संतप्त हो रहे हैं। दुःख और अशान्ति का साम्राज्य बहुत बड़ा हो गया है। इसका कारण क्या है? किसी संत ने इसके दो कारण बताये हैं—अभाव और अतृप्ति। अभाव की पूर्ति तो कभी हो भी जाय, पर तृष्णा का पेट इतना बड़ा हैं कि किसी ने भी अभी तक उसे नहीं भर पाया।

तृष्णा तो आकाश की तरह अनन्त है। एक के बाद दूसरी उत्पन्न होती ही रहती है। बड़े-बड़े राजा-महाराजा, सेठ-साहूकार और उच्च पदाधिकारी भी तृष्णा के कारण अशान्त जोवन बिता रहे हैं। वरन् उनसे वे गरीब ही अच्छे हैं जो सूखी रोटी खाकर भी शान्ति की निन्द्रा में सोते हैं। आज खाया तो कल की चिन्ता नहीं। "मेहनत से कमाया और बनाकर खाया" उन्हें चिन्ता ही क्या? मस्त पड़े रहते हैं। पर इन धनवानों की तो बात ही निराली है। रात-दिन बेचैनी। सांस लेने तक की भी फुरसत नहीं। इससे सिद्ध है कि सुख-शांति किसी धन-सम्पत्ति अथवा बाह्य साधन से नहीं मिल सकती। यह तो सन्तोष का ही फल है। जहाँ सन्तोष है, वहीं शांति है, वहीं सुख का राज्य है। श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदास जी का भी यही मत है:—

बिनु सन्तोष न काम नसाहीं।
काम अछत सुख सपनेहुँ नाही॥

वस्तु की प्राप्ति प्रारब्ध के अनुसार ही होती है अथवा प्रभु की जैसी इच्छा होती है, वैसा ही होकर रहता है—ऐसी विचार-धारा बन जाने पर संतोष आ ही जाता है और तभी सुख और शांति मिल जाती है।

या तो आप प्रारब्ध के अनुसार प्राप्त सुख-दुःख को प्रसन्नता पूर्वक भोगते हुए अपने वर्तमान कर्त्तव्य का पालन करते रहिये अथवा अपना सब भार परम प्रभु के पदारविन्दों पर छोड़ दीजिये। वे भक्तों के योग-क्षेम का स्वयं वहन करते हैं और उसी में उनको आनन्द भी मिलता है। वे जैसे रखना चाहें वैसे ही रहिये। कोई चिंता करने की आवश्यकता नहीं। बस, ये मार्ग ही शांति के मार्ग हैं। आप जो पसन्द करें। "येनेष्टं तेन गम्यताम्।"

जब कभी भी दुःख आयेगा, भोगना तो होगा ही। रोकर भोगो या हंस कर। विवेकी दुःख को हंसकर भोगता है और अविवेकी रोकर। आप भी विवेक का आदर कीजिये। दुःख में ही सुख के दर्शन कीजिये। वास्तव में तो सुख-दुःख कुछ है ही नहीं। यह तो केवल मन की मान्यता है। जिससे एक व्यक्ति को सुख मिलता है, उसी से दूसरे को दुःख मिलता है। एक ही व्यक्ति को एक वस्तु कभी सुखद और कभी दुःखद हो जाती है। इससे सिद्ध होता है कि सुख-दुःख किसी वस्तु में नहीं, वह केवल कल्पना मात्र है।

सच्चा वीर मानव वही है, जो हर प्रकार की परिस्थिति में प्रसन्न रहता है। ऐसे पुरुषों के सन्तोष और सुख साथी बन जाते हैं। वह सुख-दुःख को पाकर भी एक रस रहता है। वह समझता है कि रात और दिन की तरह सुख-दुःख भी मेहमान ही हैं। जो आया है वह जायगा भी अवश्य। रज्जब जी कहते हैं :—

रज्जब केहि लगि रोइये, हंसिये कौन विचार।
गये सो आवन को नहीं, रहे सो जावन हार॥

आने-जाने का ही नाम संसार है। सुख जायगा तो दुःख और दुःख जायगा तो सुख। आप भगवान् की इस मधुर लीला का अवलोकन करते रहिये। इसी में चिर शांति है।

सन्तोष धारण करने से आपको सुख-शांति मिलेगी। मन प्रसन्न रहेगा। रोगों से भी आपकी रक्षा होती रहेगी। क्योंकि असंतोष ही नाना प्रकार के रोगों का कारण है। चिंता-सांपिनि को संतोष ही खा सकता है। संतोष से ईर्ष्या और द्वेष भी मिट जाते हैं। विनाश और वियोग का भय नहीं रहता, यदि संतोष है। स्मरण रखें "तृष्णा आग है और संतोष जल, तृष्णा विष है और संतोष अमृत, तृष्णा मृत्यु है और संतोष जीवन।" जब तक तृष्णा रूपी आग धधकती रहेगी, तब तक आप चिंता रूपी चिता पर जलते ही रहेंगे। अतः आप संतोष कीजिये, फिर तो सुख-शांति और आनन्द आपके पीछे लगे रहेंगे।

सियावर रामचन्द्र की जय।

———

ज्ञानयोग द्वारा कल्याण प्राप्ति

यह मानव जीवन बड़ा ही दुर्लभ है। दयालु परमात्मा की परम अहैतु की कृपा से ही चौरासी लाख योनियों के चक्कर लगाने के पश्चात् दुर्लभ शरीर मिलता है। अतः इस सुवर्ण-अवसर को प्राप्त करके हमें शीघ्रातिशीघ्र अपना कल्याण कर लेना चाहिए।

श्री मद्भागवात् में मानव के परम कल्याण के लिए तीन मार्ग बताये गये हैं—ज्ञान योग कर्म योग और भक्ति योग। इनके अतिरिक्त और चौथा उपाय नहीं है।

योगास्त्रयो मया प्रोक्ता नृणाश्रेयो विधित्सया।
ज्ञानं कर्म भक्तिश्च नोपायोऽन्योऽस्ति कुत्रचित्॥

भा० ११।२०:६

श्री गीता जी में केवल दो योगों का उल्लेख मिलता है। ज्ञानियों के लिए ज्ञान योग और कर्मप्रवण स्वभाव वालों के लिए कर्मयोग।

लोकेऽस्मिन् द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ।
ज्ञान योगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम्॥

गी० ३।३

यहाँ भक्ति का उल्लेख नहीं है। इसका कारण यह प्रतीत होता है कि भक्ति ज्ञान और कर्म का ही मधुर सम्मिश्रण है।

श्री गीता जी तथा अन्यान्य ग्रन्थों के अध्ययन से यह सिद्ध हो जाता है कि ज्ञान, कर्म और भक्ति ये स्वतन्त्र साधन हैं। किसी एक के भी अनुष्ठान

से कल्याण हो सकता है। यही बात गीता जी में निम्नलिखित श्लोक में बतायी गयी है।

ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति केचिदात्मातमात्मना।
अन्ये सांख्येन योगेन कर्मयोगेन चापरे॥

अ० १३।२४

इन तीनों मार्गों की साधन प्रणाली तो अलग-अलग है परन्तु साध्य की (अन्तिम फल की) प्राप्ति में भिन्नता नहीं है। किसी एक साधन में स्थित होकर भी मनुष्य उसी अविनाशी तत्व को प्राप्त करता है जो तीनों मार्गों का साध्य है। अतः श्री भगवान् कहते हैं—

सांख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः।
एकमप्यास्थितः सम्यगुभयोर्विन्दते फलम्॥
यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते।
एकं साख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति॥

गी० ५।४-५

किसी विद्वान् का यह मत्त भी ठीक ही जंचता है कि एक भी मार्ग में निष्ठा हो जाने से अन्य मार्गों के लक्षण भी स्वतः ही प्राप्त हो जाते हैं।

जो लोग व्यर्थ ही आपस में विवाद करते फिरते हैं कि भक्ति ही श्रेष्ठ है अथवा ज्ञान से ही मुक्ति मिलती है, भक्ति या कर्मयोग से नहीं, उनको चाहिये कि वे अपने दुराग्रह को छोड़ करके श्री गीता जी के पाचवें अध्याय के चौथे और पांचवें तथा तेरहवें अध्याय के चौबीसवें श्लोकों को ठीक से मनन करें। जैसे बैंगन का शाक किसी के लिए पथ्य है और किसी के लिए विष के समान है वैसे ही अपने-अपने अधिकार, परिस्थिति तथा रुचियों के अनुसार किसी के लिए कर्मयोग श्रेष्ठ हैं तो किसी लिए के ज्ञानयोग अथवा भक्तियोग। यह स्मरण रखने की बात है कि उपाय रूप में भिन्नता रहते हुए भी उपेय रूप में सब मार्ग एक ही हैं।

कोई–कोई ज्ञान–मार्ग को अत्यन्त कठिन बताते हैं और भक्ति मार्ग को सुलभ। पर इस लेखक के विचार में तो यह बात ठीक नहीं जँचती। जिसका जिस मार्ग में अधिकार है तथा रुचि भी है उसके लिए वह सुलभ ही है। मस्तिष्क प्रधान पुरुषों के लिए ज्ञान–मार्ग सुलभ होगा तो हृदय प्रधान पुरुषों के लिए भक्ति–मार्ग। कठिनता का अनुभव तो तभी होता है जब वे अपनी परिस्थिति तथा रुचि के प्रतिकूल साधनों को अपनाते हैं। श्री गोस्वामी तुलसीदास जी ने तो ज्ञान–मार्ग को कृपा की धारा बताया है—"ज्ञान के पंथ कृपाण के धारा" और फिर—

कहत कठिन समझत कठिन, साधत कठिन विवेक।
होय घुनाच्छर न्याय जौं, पुनि प्रत्यूह अनेक।

कहा है। परन्तु भक्ति–मार्ग के लिए भी वे ऐसे ही लिखते हैं—

रघुपति भगति करत कठिनाई।
कहत सुगम करनी अपार जानै सोई जेहि बनि आई ॥

(वि० प०)

जैसे भक्ति मार्ग में नवधा भक्ति के अन्तर्गत तीन मुख्य हैं, श्रवण कीर्त्तन और स्मरण वैसे ही ज्ञान मार्ग में श्रवण, मनन और निदिध्यासन ये तीन उपाय हैं। भक्ति के लिए वैराग्य का होना परमावश्यक है। श्री तुलसीदास जी लिखते हैं—

होइ विवेक मोह भ्रम भागा।
तब सिय राम चरण अनुरागा ॥
मन ते सकल बासना भागी।
केवल राम चरण लय लागी ॥
तेहि कर फल पुनि विषय विरागा।
तब मम चरण उपज अनुरागा ॥

वैसे ही ज्ञान मार्ग में वैराग्य परमावश्यक है—

"वादि विरति बिनु ब्रह्म विचारू।"
"ज्ञान कि होइ विराग बिनु।"

जैसे भक्ति के लिए श्रद्धा और विश्वास चाहिये इनके अभाव में भक्ति की प्राप्ति असम्भव है—

श्रद्धा बिना, धर्म नहिं होई।
बिनु विश्वास भगति नहीं तेहि बिनु द्रवहिं न राम।

वैसे ही ज्ञान-मार्ग में श्रद्धा की आवश्यकता बतायी गई है—

श्रद्धावांल्लभते ज्ञानम्— गी० ४।३

ज्ञान से भक्ति मिलती है और भक्ति से ज्ञान। शास्त्रों में दोनों तरह के प्रमाण मिलते हैं। श्री गीता जी तथा श्री रामचरित मानस में भी अनेकों उदाहरण हैं। यह तो निश्चय ही है कि ज्ञान और कर्म (अथवा भक्ति) में वैसा ही सम्बन्ध है जैसा अन्धे और लंगड़े में। जैसे अन्धे और लंगड़े में मित्रता हो जाय तो दोनों गन्तव्य स्थान पर पहुँच सकते हैं, अन्यथा नहीं। कर्म-हीन ज्ञान तथा ज्ञान-हीन कर्म दोनों कृत्रिम, शक्ति-हीन और महत्वहीन ही रह जाते हैं। जैसे आकाश में उड़ने के लिए पक्षियों के दो पक्ष (पंख) हुआ करते हैं। केवल एक से वे उड़ नहीं सकते। वैसे ही ब्रह्म प्राप्ति रूप ऊड़ान के लिए ज्ञान और कर्म ये दोनों पंख हों तो सोने में सुगन्ध हो जाय।

श्री मद्भगवद् गीता में ज्ञानियों के तीन लक्षण बताये गये हैं। (१) इन्द्रिय निग्रह (२) समबुद्धि और (३) सर्वभूतहितरता।

संनियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र सम बुद्धयः।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूत हिते रताः॥

गी० १२।४

जिनमें ये तीनों लक्षण पूर्ण रूप से पाये जाते हैं वे ही सच्चे ज्ञानी हैं अन्यथा केवल वाक्य ज्ञान से काम चलने का नहीं।

श्री गीता जी में भक्तों के लिए छब्बीस गुण दैवी सम्पत्ति के नाम से बताये गये हैं। (देखिये गी० अ० १६।१–३) उसी तरह तेरहवें अध्याय में सातवें श्लोक से ग्यारहवें श्लोक तक ज्ञानियों के बीस लक्षण बताये गये हैं और उन्हीं का 'ज्ञान' नाम भी रखा है—

एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा।

श्री रामचरित मानस में भी यही बात सूत्र रूप में कही गई है—

ज्ञान मान जहँ एकउ नाहीं।
देखिय ब्रह्म समान जग माहीं॥

सिद्ध ज्ञानयोगियों में तो ये लक्षण स्वाभाविक ही होते हैं और साधकों को ये साधन से प्राप्त होते हैं।

ज्ञान योग के साधक को अभेदोपासना भी कहते हैं इसके लिए साधन विस्तार रूप से अठारहवें अध्याय के ५१-५३ वें श्लोकों में हैं। चौदहवें अध्याय में सिद्ध ज्ञान-योगी का गुणातीत के नाम से कहा गया है। उनके लक्षण भी वही बताये गये हैं। सिद्ध ज्ञानियों में समता अवश्य होनी चाहिये। पदार्थों में समता, क्रिया में समता, भाव में समता, मनुष्य में समता और पशुओं में समता अवश्य होनी चाहिये। तभी वह 'पंडित' कहलाता है।

पण्डिताः सम दर्शिनः

यहाँ बहुत से लोग अपने-अपने स्वार्थ साधने के लिए 'समदर्शिनः' के बदले 'समवर्तिनः' करके इसके अर्थ को अनर्थ कर देते हैं। उन लोगों से सावधान रहना चाहिये।

ज्ञान मार्ग में प्रारम्भ से ही अभेद रहता है। इसमें साधक को सबसे पहले 'सब ब्रह्म रुप' है ऐसा निश्चय करना पड़ता है। तत्पश्चात् 'स्वयं भी

ब्रह्म रूप' हूँ' ऐसा निश्चय होता है। इसको 'स्वस्वरूपस्थिति' या 'ब्रह्म निष्ठा कहते हैं। इस मार्ग में विचार का आश्रय लेना पड़ता है। मैं सत्-चित् आनन्द स्वरूप आत्मा हूँ अतः मेरा जन्म-मरण नहीं होता। मुझे ज्ञान के लिए कही भटकना नहीं है 'क्योंकि मैं चित हूँ और मुझे सुख पाने के लिए किसी की अपेक्षा नहीं है क्योंकि मैं स्वयं आनन्द स्वरूप हूँ' ऐसा विचार करना पड़ता है। मैं शरीर नहीं, मैं प्राण नहीं, मैं इन्द्रिय नहीं, मैं अन्तःकरण नहीं, अतः जन्म मरण, जरा-व्याधि, भूख-प्यास, सुख-दुःख, संयोग-वियोग, हर्ष-शोक कर्त्तापन, भोक्तापन से मैं परे हूँ।

दीर्घकाल तक ऐसा विचार करते-करते साधक ज्ञान प्राप्त करके कृतन्कृत्य हो जाता है।

ज्ञानं लब्ध्वा परां शांतिमचिरेणाधिगच्छति।

घर-घर में कल्पवृक्ष लगाइये

आज सारा संसार शोक सन्तप्त हो रहा है। चिन्ता की ज्वाला में सभी झुलसते जा रहे हैं। संकट पर संकट आता रहता है। दुःख और विपत्तियों की बाढ़-सी आ गई है। आधि और व्याधि से विरले ही बचे हुए हैं। युद्ध के बादल मंडरा रहे हैं। चारों ओर अशांति का साम्राज्य छा रहा है। भुखमरी तो साधारण-सी बात है। वर्षा नहीं हुई तो अकाल और वर्षा अधिक हो गई तो भी अकाल। कोई खाते-खाते मर रहा है तो कोई खाये बिना ही मृत्यु का ग्रास बन रहा है।

किसी के अधिक लड़के हैं तो वह रो रहा है। कहाँ से उनका पालन-पोषण किया जाय? शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध कैसे हो? किसी के घर लड़कियाँ हैं तो वह आत्म हत्या करने की सोचता है। लड़कियों के विवाह में कठिनाई होती है। पढ़ी-लिखी, सुशील, सुशिक्षित लड़की भी दें और ऊपर से हजारों रुपये की दक्षिणा भी। किन्ही घरों में एक बालक के नाम को तरसते हैं।

इन सब दुखों का कारण क्या है? पता लगाने से ही हम इनसे बचने का उपाय ढूंढ़ सकते हैं। सन्त–महात्माओं के वचनों को सुनकर यही निश्चय होता है कि धर्म और ईश्वर में जिनका विश्वास नहीं है वही दुःख से सन्तप्त हो रहे हैं, अन्यथा जो धर्म और ईश्वर में श्रद्धा–विश्वास रखते हैं, वे भारी-से-भारी संकट को हँसते हुए पार कर जाते हैं।

जो भगवद् भक्त, विवेकी और ज्ञानी हैं वे तो दुःख-सुख को कुछ समझते ही नहीं। उनके लिए तो सुख–दुःख केवल मन की मान्यता मात्र है। जो साधारण मनुष्य हैं वे धर्म तथा ईश्वर में विश्वास रखते हैं और संकट

पड़ने पर किसी प्रकार की उपासना, अनुष्ठान आदि के द्वारा संकट से बचने का उपाय करते हैं। हमारे शास्त्रों में तथा पुराणों में अनेक प्रकार के अनुष्ठान ऐसे बताये गये हैं, जिनके द्वारा संकटों से बचा जा सकता है। जो शास्त्र पुराणों से अनभिज्ञ हैं, विशेष साधना नहीं कर सकते हैं, वे केवल तुलसीदास कृत रामचरितमानस से ही लाभ उठा सकते हैं। यह ग्रन्थ अनेक प्रकार के महत्वपूर्ण मन्त्रों से भरा हुआ है। वास्तव में इसे 'मन्त्र-शास्त्र' कहना चाहिये। कलियुगी जीवों के लिये तो यह प्रत्यक्ष में कल्प-वृक्ष ही है। जो माँगे वही मिल जाय। किसी सन्त ने लिखा है :—

रामायण सुरतरु की छाया।
दुख भये दूर निकट जो आया।

स्वयं गोस्वामीजी ने इस ग्रन्थ को कल्पवृक्ष, काम-धेनु और चिन्तामणि कहा है, क्योंकि इसके सेवन से मनोवांछित फल मिलता है, संकट टलता है, सोच दूर होता है और भाग्य बढ़ता है।

अभिमत दानि देवतरु वर से।
सेवत सुलभ सुखद हरि हर से॥
मन्त्र महामनि विषय व्याल के।
मेटत कठिन कुअंक भाल के॥
रामचरित चिन्ता मनि चारू।
संत सुमति तिय सुभग सिंगारू॥

राम कथा सुर धेनु सम, सेवत सब सुख दानि।

कहाँ तक कहा जाय! इस ग्रन्थ की अनुपम महिमा है। यह दीनों के लिए कामधेनु, अनाथों का आश्रय, रोगियों के लिए धन्वन्तरि और चिन्ताग्रस्तों के लिए चिंतामणि है। नैतिक शिक्षा के लिए तो यह ग्रन्थ अद्वितीय है ही।

"It ,s singularly a moral book"

इस लेख के दीन लेखक ने कई नर-नारियों को इस "कल्प-वृक्ष" के सेवन से लाभ उठाते हुए अपनी आँखों देखा है। रोगियों का रोग दूर हुआ है, पुत्रहीनों को पुत्र मिला है, विद्यार्थी को विद्या मिली है और साधकों को सिद्धि प्राप्त हुई है। और भी अनेक लाभ होते हैं। लाभ सम्बन्धी कुछ अनुभवों की चर्चा यहाँ की जा रही है :—

(१) जिस स्थान में वर्षा का अभाव हो जाता है वहाँ सामूहिक-पाठ विधि-पूर्वक करने पर वर्षा होती है। यह लेखक का अनुभव है।

(२) जो जीविका (नौकरी) चाहते हों, उन्हें इसके सेवन से शीघ्र ही जीविका मिल जाती है।

(३) जिन बालक-बालिकाओं के विवाह होने में कठिनाई होती है, इस ग्रंथ के पाठ से उनका विवाह आसानी से हो जाता है।

(४) स्त्रियों के हित में भी इस ग्रन्थ का पाठ लाभदायक होता है। पति-पुत्र कुशलपूर्वक रहते हैं। घरेलू विपत्तियाँ दूर होती हैं।

(५) मुकदमा में विजय होती है तथा इसके सेवन से ऋण से मुक्ति मिलती है। लेखक ने कई बार अनुभव करके देख लिया है।

इसलिये प्रत्येक मानव को चाहिये कि इस श्रीरामचरितमानस रूपी कल्पवृक्ष को अपने घर तथा हृदय में स्थापित करें। इस कल्प-वृक्ष का सेवन कैसे करना चाहिये ?—यह इसके पठन-मनन तथा सत्संग से ज्ञात हो सकता है। इस सम्बन्ध में "कलियुग का कल्पवृक्ष" नामक पुस्तक द्वारा बहुत कुछ बताया गया है। अतएव विशेष अनुरोध है कि आप भी इस कल्पवृक्ष से लाभ उठाने के हेतु अपने घर में इसका पठन-पाठन आरम्भ कराइये ! इस कल्प-वृक्ष को आरोपित कर समस्त सुख प्राप्त कीजिये। यदि आपके भवन में यह 'कल्पवृक्ष' स्थिर हो सका तो निश्चय ही आपकी सारी कठिनाइयाँ दूर होकर दिव्य आनन्द का पथ प्रदर्शित होगा, आप मनोवांछित फल प्राप्त कर सकेंगे

———

अपने जीवन को दिव्य बनाइये

प्रत्येक मनुष्य के मन में सुख की इच्छा रहती है। वह सर्वत्र अपनी प्रतिष्ठा चाहता है। अधिकांश लोगों की लालसा यही रहती है कि वे समाज में अग्रगण्य बनकर रहें। पर होता है प्रायः उल्टा ही। सुख के बदले दुःख और मान के बदले अपमान ही मिलता है। धन और पद को पाकर मनुष्य अपने जीवन की महत्ता प्रकट करना चाहता है। पर यह है असम्भव। धन से ही कोई महान् बनता होता तो डकैतों के पास भी धन तो है ही। पद तो दुष्ट राक्षसों को भी मिल जाता है। यदि ये अत्याचारी पुरुष चाहें तो सारे देव-समाज को दबाकर उनके सम्राट् बन जायें। यह स्मरणीय बात है कि इन्द्रियों की लोलुपता, दुष्ट आचरण, निषिद्ध कार्य हिंसा और असत्य के द्वारा सच्ची प्रतिष्ठा नहीं मिलती। कहीं मिल भी जाय तो कुछ ही समय के लिए। पश्चात् उन्हें नीचा ही देखना पड़ता है। आसुरी मानव का उत्थान हुआ ही कब है? विजय तो सदा देवताओं की ही होती आयी है।

'यतो धर्मस्ततो जयः'

आप चोरी करके चोरों के समाज में, ठग बनकर के ठगों के समाज में और पतित बन करके पतितों के समाज में सम्मान पा सकते हैं; पर सज्जन-समाज में तो आप अपने सिर को ऊँचा उठा नहीं सकते। सर्वान्तर्यामी प्रभु के दरबार में आपकी चालाकी नहीं चल सकती। अन्ततोगत्वा आपका तो पतन ही निश्चित है। आज लोग बड़े उत्साह के साथ 'खाओ–पीओ और मौज करो' की नीति का समर्थन कर रहे हैं। पर उन्हें यह पता नहीं है कि संसार में प्रकृति का अटल नियम है—'इस हाथ ले, उस हाथ दे।'

जो ठगता है वह स्वयं ठगा जाता है। जो लूटता है वह स्वयं लूटा जाता है। जो मारता है वह स्वय मारा जाता है। फाँसी के बदले फाँसी ही यहाँ का प्राकृतिक नियम है। यह सब प्रत्यक्ष ही हम अपनी आँखों के सामने देख रहे हैं कि लोग किस तरह बाध्य होकर अपने-अपने कर्मों के फल भोग रहे हैं। फिर भी हम अन्धे ही बने रहते हैं। क्यों नहीं, हमारी ज्ञान की आँखों में मोतियाबिंद जो छा गया है।

देखत हूँ देखत नहीं, ऐसे हैं मतिमन्द।
तुलसी या संसार में भयो मोतियाबिंद ॥

यदि आप अपना कल्याण चाहते हैं तो आप शीघ्र ही अपने जीवन को दिव्य बना लीजिये। दैवीसम्पत्तियुक्त जीवन ही दिव्य जीवन है। जिसका जीवन दिव्य है, उसी को सुख और शान्ति की प्राप्ति होती है। सफलता उसके पीछे रहती है और लक्ष्मी उसकी दासी बन जाती है।

दैवी सम्पत्ति के छब्बीस लक्षण श्री गीता जी के सोलहवें अध्याय में बताये गये हैं—निर्भयता, अन्तःकरण की पवित्रता, ज्ञानयोग में स्थिति, दान इन्द्रिय--दमन, यज्ञ, स्वाध्याय, तप, सरलता, अहिंसा, सत्य, अक्रोध, त्याग, शांति, चुगली न करना, दया, निर्लोभता, तेज, क्षमा, धैर्य, बाहर की शुद्धि, अद्रोह, कोमलता, शास्त्रविरुद्ध कर्म करने में संकोच, अचपलता और मान का अभाव।

इन लक्षणों में 'अभय' शब्द को सर्वप्रथम रखकर भगवान् ने यह बताया है कि जो डरपोक हैं, वे इस दैवी–सम्पदमण्डल में प्रवेश नहीं कर सकते। निर्भीकता ही इसके लिए प्रवेशपत्र है। वास्तव में जो कामी तथा विषय–लोलुप होकर दिन–रात पाप–कर्मों में रत रहते हैं, वे ही अकारण भयभीत रहा करते हैं :

जे कामी लोलुप जग माहीं। कुटिल काक इव सबहि डराहीं ॥

विना टिकट लिए कोई रेलगाड़ी में बैठ जाय तो उसे यही भय बना रहेगा कि कहीं टी० टी० ई० न इस डिब्बे में आ जाय। एक टी० टी० ई० ने मुझे बताया था कि बिना टिकट के यात्री के चेहरे को देखकर ही पता लग जाता है कि इसके पास टिकट नहीं है। सी० आई० डी० (खुफिया पुलिस) और पुलिस कर्मचारियों से पूछिये तो पता चलेगा कि वे चोरों और डकैतों के चेहरे को देखकर ही उन पर शंका कर बैठते हैं और उनको गिरफ्तार कर लेते हैं।

अतः आप मन, कर्म और वचन से सच्चे पुरुष बनिये तो संसार में कहीं आपको भय नहीं रहेगा। फिर सभी आपके अवैतनिक सेवक बनने में अपना गौरव समझेंगे। मान-प्रतिष्ठा आपके दास-दासी बनकर रहेंगे। आप जहाँ जायेंगे, वहीं का वातावरण ही निर्मल और शांत हो जायगा और तो क्या, आप संसार के बन्धन से मुक्त हो जायेंगे।

दैवी सम्पद् विमोक्षाय।'

यही मानव-जीवन का परम पुरुषार्थ है। स्वयं मुक्त होकर दूसरों को मुक्त कीजिये—यही सच्ची सेवा है।

सियावर रामचन्द्र की जय।

———

मानवता और उसके भेद

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवी सरस्वती व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ।।

संत-महात्माओं ने इस मानव-शरीर को बड़ा ही दुर्लभ बताया है; क्योंकि यह चौरासी लाख योनियों से परे है, साधन धाम तथा मोक्ष का द्वार। ज्ञान-विज्ञान की प्राप्ति भी इसी शरीर में सुलभ है। इसलिये—

'दुर्लभो मानुषो देहः'

'नरतन सम नहिं कवनिहु देहि,

बड़े भाग मानुष तन पावा । सुर दुरलभ सद ग्रन्थनि गावा ।

—इत्यादि वचन कहे गये हैं। यह मानव-शरीर भगवान को भी परम प्रिय हैं। क्यकि इसमें उनका अंश विशेष है।

सब ममप्रिय सब मम उपजाए। सबसे अधिक मनुज मोपि भाए ।।

मनु की संतान होने से ही मनुष्य का 'मानव' नाम पड़ा। सब का नेता होने से इसको 'नर' भी कहते है—नयतीति नरः प्रोक्तः परमात्मा सनातनः। नरसे चाहे कोई नारायण बन जाय, अथवा चाहे वानर (पशु) बन जाय। शास्त्रों में गुण-कर्म-भेद से 'नर' के कितने ही भेद किये गये हैं। यहाँ संक्षेप में कुछ का वर्णन किया जाता है।

(१) नररूप नारायण

जो अनेक संकटों को सहकर भी अपने धर्म का पालन करते हैं-उनका परित्याग नहीं करते, वे धीरे पुरुष वास्तव में नारायण भगवान् के ही रूप हैं।

जिय तजि जन तजि मान तजि, धारत धरम अनूप।
सो नर नहिं नरनाह नहिं, नारायण को रूप॥
(संत अमृतलाल जी)

नारि नयन सर जाहि न लागा। घोर क्रोध तम निसि जो जागा।
लोभ पाँस जेहिं गर न बँधाया। सो नर तुम्ह समान रघुराया॥
(मानस)

ज्ञानी भक्त भी भगवान् के ही रूप हैं—
ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्
(गीता अ० ७)

(२) नर-देवता

जो इस मानव-शरीर को पाकर श्री गीता, रामायण—पुराणादि ग्रंथों को सुनते हैं, पढ़ते हैं, मनन करते हैं तथा उसी के अनुसार आचरण करके अपने में दैवी सम्पत्ति-के दान, दया, दम आदि गुणों का विकास करते हैं, वे नर नहीं देवता हैं।

ये शृण्वन्ति पठन्त्येव गीताशास्त्रमहर्निशम्।
न ते वै मानुषा ज्ञेया देवरूपा न संशयः॥
(गीता-मा०)

न तपस्तप इत्याहुर्ब्रह्मचर्यं परं तपः॥
ऊर्ध्वरेता भवेद्यस्तु स देवो न तु मानुषः॥
(शिवसंहिता)

(३) नर-श्रेष्ठ (मानव-महात्मा या पण्डित)

जो विद्या, कुल, शील और कर्म से युक्त हों, वे मनुष्यों में श्रेष्ठ महात्मा या पण्डित हैं।

यथा चतुर्भिः कनकं परीक्ष्यते निघर्षणच्छेदनतापताडनैः।
तथा चतुर्भिः पुरुषः परीक्ष्यते श्रुतेन शीलेन कुलेन कर्मणा ॥
(चाणक्य०)

जो परस्त्रियों को माता के समान, परधन को मिट्टी के समान और जो सब प्राणियों को अपने ही समान देखता है, वह पण्डित है।

मातृवत्परदारेषु परद्रव्येषु लोष्टवत्।
आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः ॥
(चाणक्य०)

जिनके मन; वचन एवं कर्म—तीनों में एक ही भाव रहता है, वे भी महात्मा ही हैं।

मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम्।
(चाणक्य०)

ऐसे सज्जन पुरुष ही अन्त में नारायणरूप हो जाते हैं।

(४) नर—रूप राक्षस (मानव-दानव)

इनका लक्षण श्री गीता जी के सोलहवें अध्याय में सातवें श्लोक से इक्कीसवें श्लोक तक देखना चाहिये। विस्तारभय से यहाँ नहीं दिया गया। संक्षेप में जो दम्भ, दर्प, अभिमान, क्रोध, कठोरता और अज्ञान से युक्त हैं अथवा जिनके मन, वचन और कर्म में और-और भाव होते हैं, जो माता—

पिता की अवज्ञा करते हैं, पर-द्रोही, पर-दार-रत हैं, काम-क्रोध-परायण, हिंसक, भोगी तथा साधु-द्रोही हैं, वे ही आसुर मानव हैं।

दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च।
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ सम्पदमासुरीम् ॥
(गीता १६।४)

मनस्यन्यद् वचस्यन्यत् कर्मण्यन्यद् दुरात्मनाम्।
(चाणक्य७)

बाढ़ेखल बहु चोर जुआरा। जे लंपट पर धन पर दारा ॥
मानहिं मातु पिता नहिं देवा। साधुन्ह सन करवावहिं सेवा ॥
जिन्ह के यह आचरन भवानी। ते जानेहु निसिचर सब प्रानी ॥
(मानस)

(५) नर-पशु (मानव-पशु)

मानव-तनु पाकर भी जो विवेक का सदुपयोग नहीं करते; जिनमें न विद्या है, न ज्ञान है, न शील है, न गुण है और न धर्म है। जो भगवान् से प्रेम नहीं करते अथवा भगवद्-विमुख हैं, वे 'पशु' ही माने गये हैं।

विद्याविहीनः पशुः।
ज्ञान नराणामधिको विशेषो ज्ञानेन हीनाः पशुभिः समानाः।
येषां न विद्या न तपो न दानं
ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः।
ते मृत्युलोके भुवि भारभूता
मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति ॥
(भर्तृहरि)

जो पै रहनि राम पै नाहीं ।
तौ नर खर कूकर सूकर सम वृथा जियत जग माहीं ।।
(वि० ५०)

भजन विना नर देह वृथा खर फेरु स्वान की नाईं
(गीतावली)

तुलसीदास हरिनाम सुधा तजि सठ हठि पियत विषय विष माँगी ।
सूकर स्वान सृगाल सरिस जन जनमत जगत जननि दुख लागी ।।
(वि० ५०)

(६) मानव–मुर्दा

जीयत राम, मुए पुनि राम, सदा रघुनाथहि की गति जेहि ।
सोइ जिए जग में तुलसी न तु डोलत और मुए धरि देहि ।।
(कविता०)

कौल काम बस कृपिन विमूढ़ा । अति दरिद्र अजसी अति बूढ़ा ।।
सदा रोग बस संतत क्रोधी । विष्नु विमुख श्रुति संत विरोधी ।।
तनु पोषक निंदक अघ खानी । जीवत सव सम चौदह प्रानी ।।
(मानस)

(७) नराधम (मानवाधम)

जो प्राप्त शक्ति, सामर्थ्य, शरीर, विद्या, धन आदि को भगवत्सेवा या जन–सेवा में नहीं लगाते, वे नराधम हैं । मरने पर इनके मुर्दा शरीर को सियार भी नहीं खाता । चाणक्य ने लिखा है—

हस्तौ दानविवर्जितौ श्रुतिपुटौ सारस्वतद्रोहिणौ ।
नेत्रे साधुविलोकनेन रहिते पादौ न तीर्थं गतौ ।।

अन्यायार्जितवित्तपूर्णमुदरं गर्वेण तुङ्गं शिरो ।।
रे रे जम्बुक मुञ्च-मुञ्च सहसा नीचं सुनिन्द्यं वपुः ।।
(अर्थ लेख के अन्त में देखिये)

मानव-दानव की अन्ति दशा

यह मानव-शरीर बड़ा ही दुर्लभ है। परम कृपालु परमेश्वर की अहेतु की कृपा से ही यह किसी–किसी को सुलभ हो जाता है। जो इस मानव-शरीर का सदुपयोग करते हैं वे ही महान् (परमेश्वर-तुल्य) बन जाते हैं—

जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई।

पर जो इस मानव-शरीर का दुरुपयोग करते हैं, वे दानव कहलाते हैं। इन्हीं को 'असुर' भी कहते हैं; क्योंकि ये आसुरी सम्पत्ति के लक्षणों से युक्त होते हैं।

ये लोग भगवद्विमुख तथा शास्त्र-पुराणों के विरोधी होते हैं।
विष्णुविमुख श्रुति संत बिरोधी।

श्री गीताजी में भी लिखा है—

न मां दुष्कृतिनो मूढ़ाः प्रपद्यन्ते नराधमाः।
माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः ।।
पापवंत कर सहज सुभाऊ। भजन मोर तेहि भाव न काऊ।

इनका सारा जीवन भोगमय बीतता है। काम-क्रोध के तो ये परायण ही होते हैं। अन्यायपूर्वक धनोपार्जन करना और परस्त्रियों का अपहरण करना तो इनका स्वभाव ही हैं। 'खाओ, पीओ, चैन करो' ही इनके जीवन का लक्ष्य रहता है। ये अपने बल का तो दुरुपयोग करते हैं और विवेक का अनादर। इसी से इनमें अभिमान और अहं की पुष्टि होती रहती है। तीनों 'द' (दान, दया और दम) से ये दूर ही रहते हैं।

मानव-शरीर का सदुपयोग परोपकार में ही है, पर ये मानव-दानव इस वात को कब समझ सकते हैं। इनका तो जन्म ही संसार के दुःख का हेतु है—

दुष्ट उदय जग आरति हेतू। जथा प्रसिद्ध अधम ग्रह केतू।
संत सहहिं दुख पर हित लागी। पर दुख हेतु असंत अभागी।

अपना कोई स्वार्थ भले ही सिद्ध न हो, पर ये परोपकार करने में चूकते नहीं। कभी-कभी तों दूसरों की हानि करने के लिये अपना जीवन भी दे देते हैं—

खल विनु स्वारथ पर अपकारी। अहि मूपक इव सुनु उरगारी॥
पर संपदा विनासि नसाहीं। जिमि ससि हति हिम उपल विलाहीं॥

श्रीमद्गोस्वामी जी ने इनके लिये उपमा भी खूब खोज निकाली—'अहि' (साँप) और 'मूषक' (चूहा) साँप तो जान लेता है और चूहा धान। उसी तरह ये अधम मानव जान और माल दोनों पर हाथ फेरते हैं।'

इन मानव-दानवों के तन, मन, वचन, श्रोत्र सभी दूसरों के अहित के लिए ही होते हैं। 'मानस' में एक-एक का उदाहरण देखिये।

(१) तन से—

पर अकाजु लगि तनु परिहरहीं।
जिमि हिम उपल कृपी दलि गरहीं॥

(२) मन से—

परहित हानि लाभ जिन केरें। उजरें हरप विपाद वसेरें।

(३) वचन से—

वंदउं खल जस सेप सरोपा। सहस वदन वरनई पर दोपा॥

(४) श्रवण से—

पुनि प्रनवउँ पृथुराज समाना । पर अघ सुनइ सहस दस काना ।।

(५) आँखों से—

जे पर-दोप लखहिं सहसाखी । पर हित घृत जिन्ह के मन माखी ।।

कहाँ तक कहा जाय, इनका सभी आचरण असत्य ही होता है—

झूठइ लेना झूठइ देना । झूठइ भोजन झूठ चवेना ।।

इस तरह के अपवित्र आचरण करने वाले मानव-दानव जीवन भर पाप की गठरी ही ढ़ोते फिरते हैं । अन्त में जब कालदेव इनको घसीटकर ले जाता है, तव ये यमराज के द्वारा दी हुई घोरतम नरकों की यातना सहकर फिर नीच योनियों में बार-बार जन्म लेते हैं । देखिये गीता अ० १६ । १६-२०—

तानहं द्विषतः क्रूरान्संसारेषु नराधमान् ।
क्षिपाम्यजस्त्रमशुभानासुरोष्वेव योनिषु ।।
आसुरी योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मान ।
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम् ।।
परद्रोही परदाररत परधन पर अपवाद ।
ते नर पावँर पापमय देह धरे मनुजाद ।।

सत्रह तत्वों से युक्त सजीव लिङ्ग (सूक्ष्म) शरीर की तो यह दशा हुई और जिस स्थूल-शरीर का त्याग किया था, वह कहीं जंगल में फेंक दिया जाता है तो कुत्ते और सियार भी सूंघना नहीं चाहते ।

चाणक्य महाराज वहुत बढ़िया दृष्टान्त देते हैं । एक मानव-दानव की मृत्यु हो गयी । उसका शव फेंक दिया गया । एक सियार जंगल से निकल

कर उसको खाने आया और उसने ज्योंही उस शव पर अपना मुँह लगाना चाहा कि आकाशवाणी ने उसे सावधान किया—

'अरे गीदड़ ! इस अति निन्दनीय नीच शरीर को शीघ्र ही त्याग दे; क्योंकि इसके हाथ दानविवर्जित है, कर्ण शास्त्रद्रोही हैं, नेत्र साधुजनों के दर्शनों से वंचित हैं, चरणों ने कभी तीर्थ-गमन नहीं किया, उदर अन्यायार्जित धन से ही पाला गया है और यह सिर सदा गर्व से ऊँचे उठा रहता था।'

श्री मद्गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी परमार्थ-विमुख इन्द्रियों की बड़ी निन्दा की है—

जिन्ह हरि कथा सुनी नहीं काना। श्रवन रंध्रअहि भवनसमाना ॥
नयनन्हि संत दरस नहिं देखा। लोचन मोर पंख कर लेखा ॥
ते सिर कटु तुँबरि समतूला। जे न नमत हरि गुरु पद मूला ॥
जिन्ह हरि भगति हृदयँ नहिं आनी। जीवत सव समान तेइ प्रानी ॥
जो नहिं करइ राम गुन गाना। जीह सो दादर जीह समाना ॥
कुलिस कठोर निठुर सोइ छाती। सुनि हरि चरित न जो हरपाती ॥

"कल्याण" (मानवता अङ्क में प्रकाशित)

————

प्रेम में बाधक

इस दुर्लभ मानव-शरीर को पाकर हमारा सर्वोच्च उद्द श्य भागवत्प्रेम की प्राप्ति होना चाहिए। सन्त-महापुरुषों का कहना उचित ही है कि "प्रेम ही जीवन है" अथवा "प्रेम ही ईश्वर है"। प्रेम के बिना हम शव और प्रेम युक्त होकर हम शिव हो जाते हैं। भक्त शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास जी ने तो प्रेम रहित मनुष्य को खर, शूकर और कूकर की उपाधि दे रखी है।

"ते नर खर कूकर सूकर सम वृथा जियत जग माहीं"

इसी कारण से शेषावतार श्री लक्ष्मणजी ने निषादराज से एकान्त में यही समझाया कि—

"सखा परम परमारथ एहू।
मन क्रम वचन राम पद नेहू॥"

एक विद्वान ने तो प्रेम की प्रशंसा करते हुए कहा है कि "प्रेम अनन्त जीवन का नाम है।"

"Love and life are words with a similar meaning."

पर भगवत्प्रेम की प्राप्ति हो कैसे? दिन-रात पोथियों को पढ़ते रहे, माला खटखटाते रहे, संतों का संग करके थक गये फिर भी मनने विषयों को नहीं छोड़ा। प्रेम की बातें चाहे जितनी भी करलें पर प्रेम की प्राप्ति अत्यन्त कठिन हैं। यह कोई ऐसी वस्तु नहीं है कि मूल्य देकर दुकान से खरीद लें। यह प्रेम तो प्रेमी के संग से ही प्राप्त होता है।

"प्रेमी से प्रेमी मिले सहज प्रेम हो जाय।"

हम तो प्रेमी की डिग्री चाहते हैं भोगी और भोगों के संग में रह कर, यह कैसी बेमेल बात है ! सूर्य हो और अन्धकार भी साथ ही रहे—किसी ने सुना है ? भगवान् को चाहते हैं तो भोगों का त्याग करना ही पड़ेगा। यह प्रेम मार्ग का सबसे बड़ा रोड़ा है। साधक को सबसे पहले व्यसनों तथा भोगों का त्याग करना ही पड़ेगा। भोगों का सेवन जितना बाधक है, प्रेम–मार्ग में भोगियों का संग उससे भी अधिक बाधक है। अतः जो मुख से इतना भी कहता हो कि "भोग में सुख है" उसका तुरन्त त्याग कर देना चाहिए। भोग और भोगी का संग करते हुए कोई भी व्यक्ति भोग का दास हुए बिना नहीं रस सकता। वह मूर्ख है जो भोगी और भोग के संग में रह कर भी छोड़ने की इच्छा रखता है। वह वास्तव में ठग है, दम्भी हैं और कोई भी सफलता का मुख नहीं देख सकता। वह पामर है जो अपने को ज्ञानी बताकर भोगों में लिप्त रहता है। नियम तो यह है कि—

"भोगी का संग करने से हम भोगी बनते हैं और प्रेमी के संग से प्रेमी" "जैसा संग वैसा ही रंग।"

स्त्रियों के विषय में तो बातें भी नहीं करनी या सुननी चाहिये। वैसे ही साधिकाओं के लिये पुरुषों की चर्चा का निषध है।

सात्त्विक आहार और सात्त्विक ग्रन्थों का अभाव भी प्रेम मार्ग में बाधक हैं अतएव इस ओर से साधकों को प्रतिपल सावधान रहना चाहिए।

सियावर रामचन्द्र की जय

गीता ज्ञान की श्रेष्ठता

गीता केवल पुस्तक मात्र नहीं यह तो हमारे हिन्दू धर्म का प्राण है। इसका सिद्धान्त त्रिकाल में सत्य है। सब काल, सब देश और सब प्रकार के मनुष्य के लिए इसका उपदेश उपयोगी है। विचार कर देखा जाय तो गीता केवल हिन्दुओं का ही ग्रन्थ नहीं हैं, संसार भर के समस्त मानव की जाति के लिए यह परम उपयोगी है। विश्व के सभी भागों के विद्वान् इससे प्रभावित हुए हैं, होते हैं और होंगे। इसमें दिये गये उपदेश सारे विश्व के लोगों के लिए हैं।

इस ग्रन्थ की विशेषता यह है कि सबके लिए सरल और सुलभ है। सभी को सुख और शान्ति की प्राप्ति होती है, इस अनुपम गीता-ज्ञान सागर में। इसके पास जो जाता है वह प्यासा नहीं, तृप्त होकर ही लौटता है। पूरा पाठ नहीं कर सके तो श्लोक या श्लोकार्द्ध से भी लाभ उठा सकता है। इसके पद-पद में गीता-तत्व वैसे ही भरा पड़ा है, जैसे गागर में सागर। इसे केवल अपनाने तथा अमल में लाने की आवश्यकता है। इस गीता-ग्रन्थ से लोक-परलोक दोनों सुधर सकते हैं। सकामी की कामना पूर्ति होती है, और निष्कामी को परमपद प्राप्त होता है। सकामी भी योग्य पदार्थ पाकर गिरता नहीं, बल्कि अन्ततोगत्वा वह भी निष्काम होकर अविनाशी पदको पा लेता है। अतः यह कह सकते हैं कि गीता प्रेय-श्रेय दोनों का भण्डार है। भूले-भटके लोगों से लेकर सयाने सज्जन पुरुषों तक का गीतापरम गुरु है, जो सबको गन्तव्य स्थान पर निर्विघ्न पहुँचा देती है।

भगवान् का वचनामृत होने से यह भगवत्स्वरूप है। जो इसका सेवन करता है वह साक्षात् भगवान् का ही सेवन करता है। आज जो सारा संसार संकट-सागर में गोता खा रहा है उसके लिये गीता प्रत्यक्ष में जलयान है।

शोक सन्ताप नाश करने के लिये अमोघ बूटी है। बस, सेवन करने की ही देरी है।

कर्त्तव्य विमुख मानव को गीता कर्त्तव्य-पथ पर लाकर जीवन संग्राम में विजयी बनाती है। गीता का सेवन करने से मनुष्य ऐश्वर्यवान् मतिमान्, धीमान्, सुयोग्यवान् बन जाता है। सबके हृदय विहारी सर्वव्यापी भगवान् के साक्षात्कार करने की विधि गीता में सन्निहित है। यह मनुष्य के जीवन को यज्ञमय और पूजामय बना देती है। कर्म फल का त्याग करा कर यह परम शान्ति प्रदान कराती है।

अहंता, ममता का त्याग करना, दानव से मानव बनना, भगवान् का ही भरोसा करना, अन्त में नर से नारायण बन जाना ही गीता का उपदेश है। वह मानवों के लिये अमृत के समान उपयोगी है। यह माता के समान पालन करने वाली है। इसकी गोद में मनुष्य सदा के लिए निर्भय हो जाता है।

गीता मनुष्य को स्वास्थ्य, अमरत्व और उन्नति की शिक्षा देती है। गीता का अध्ययन तभी सार्थक होता है जब मनुष्य कर्म बन्धन से छूट जाय। यह नितान्त सत्य है कि जो भी मनुष्य गीता का आश्रय ले लेता है, वह भव सागर से अवश्य पार हो जाता है। हाँ ! इसका अध्ययन ध्यानपूर्वक तथा पक्षपात रहित होकर ही करना चाहिए, यह दिव्य ज्ञान की खानि है। जो जितना ही अविहित चित्त होकर इसमें लगेगा, वह उतना ही अधिक प्राप्त कर सकेगा।

गीता की सबसे बडी विशेपता है इसका सार्वभौम सिद्धान्त। किसी विद्वान् के कथनानुसार "गीता सब धर्मों के भ्रातृ-भाव का जीता-जागता प्रमाण है" इसके जोड़ का संसार में कोई साहित्य दृष्टिगोचर नहीं होता। यह सदा पद्यमय और नवीन है। युद्ध-स्थल में इसका गान होने पर भी यह शान्ति से परिपूर्ण है।

आज प्रत्येक मानव को गीता-गंगा में स्नान करना परम आवश्यक है। कितना अच्छा हो कि प्रत्येक विद्यालय में इस गीता ग्रन्थ का अध्ययन प्रत्येक छात्र के लिए अनिवार्य कर दिया जाय। विद्यार्थी जीवन में ही गीता का अध्ययन होने से जीवन-निर्माण में विशेष सहायता मिल सकती है। गीता साधारण ग्रंथ नहीं है। इस ग्रन्थ के द्वारा समस्त मानव को जागृति मिल सकने में सन्देह नहीं। गीता निराश जीवन में आशा की ज्योति प्रकट करती है। इसीलिए भगवान् वेदव्यास जी कहते हैं—

गीता सुगीता कर्त्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरेः।

भगवान् सबको सुमति दें।

———

सदा दीवाली संतकी

तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः ।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता ।।
(गीता १० । ११)

'हे अर्जुन ! उनके ऊपर अनुग्रह करने के लिए ही मैं स्वयं उनके अन्तःकरण में एकीभाव से स्थित हुआ, अज्ञान से उत्पन्न हुए अन्धकार को प्रकाशमय तत्वज्ञानरूप दीपक के द्वारा नष्ट करता हूँ ।'

उपर्युक्त वचन श्री भगवान् के श्रीमुख से अर्जुन के प्रति कहा गया है । भक्तों का हृदय ही तो भगवान् का वृन्दावन है मनुष्य अपने अपने घरों में दीवाली मनाता है, भगवान् अपने भक्तों के हृदय-मन्दिर में मनाते हैं ।

भगवान् का यह अंशरूप जीव मोहरूपी अमावस्या की रात्रि में सोया हुआ है । 'मोहनिसा सब सोवनिहारा ।' इसमें ममता ही घोर अन्धकार है, जो राग-द्वेषरूपी उल्लू के लिए सुखदायक है ।

ममता तरुन तमी अँधियारी । रागद्वेष उलूक सुखकारी ।

इसी मोहनिशा में सोया हुआ मनुष्य नाना प्रकार के स्वप्न देखता हुआ, सुख-दुःख को भोगता हुआ चौरासी लाख योनियों में भ्रमण कर रहा है । जब तक मोहनिशा दूर नहीं होती, तब तक जीवन का कल्याण नहीं है । कल्याण–कामी पुरुषों को झटपट इस मोहनिद्रा से जाग जाना चाहिये ।

जिस प्रकार रात्रि के अन्धकार को न तो षोडशकलापूर्ण चन्द्रमा ही दूर कर सकता है और न असंख्य तारे ही । आग में भी उतनी सामर्थ्य नहीं

क सम्पूर्ण अन्धकार को दूर कर दे। तभी तो श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदास जी लिखते हैं—

राकापति षोडस उअहिं तारागन समुदाइ।
सकल गिरिन्ह दव लाइय बिनु रबि राति न जाइ॥

वैसे ही मनुष्य के हृदय में जो अज्ञानरूपी अन्धकार है, उसको दूर करने के लिए नाना प्रकार के कर्मकाण्ड तथा पुस्तकी ज्ञान भी समर्थ नहीं है।

मोह-निशा से जागनें के लिए तथा ममतारूपी अन्धकार को दूर करने के लिए तीन उपाय बताये गये हैं—(१) ज्ञान, (२) वैराग्य और (३) भक्ति। (वास्तव में ये तीनों भी आपस में मिले ही हुए हैं। एक के विना दूसरा रह नहीं सकता।) श्री रामचरितमानस में तीनों का उदाहरण देखिये—

(१) ज्ञान—

होइ बिबेकु मोह भ्रम भागा। तब रघुनाथ चरन अनुरागा॥
सपने होइ भिखारि नृपु रंक नाकपति होय।
जागें लाभ न हानि कछु तिमि प्रपंच जियँ जोय॥

(२) वैराग्य—

जानिय तबहिं जीव जग जागा। जब सब विषय विलास विरागा॥

(३) भक्ति—

भगत भूमि भूसुर सुरभि सुरहित लागि कृपाल।
करत चरित धरि मनुज तनु सुनत मिटहिं जग जाल॥
सखा समुझि अस परिहरि मोहू। सिय रघुबीर चरन रत होहू॥

भक्ति, ज्ञान और वैराग्य भगवान् की कृपा से ही प्राप्य हैं, अन्यथा नहीं। मनुष्य का कर्तव्य तो यहीं तक सींमित है कि वह येनकेनप्रकारेण अपने अंतःकरणरूपी आलय को पवित्र कर ले।

अन्तःकरण की शुद्धि के लिए श्री भगवान्नमजप और श्रीहरि-यश-श्रवण अमोघ उपाय है। जो इन दोनों के द्वारा अपने हृदय को पवित्र कर लेते हैं, उन्हीं के हृदय-मन्दिर में बैठ कर भगवान् ज्ञानदीप जलाकर दीवाली मनाते हैं—जो कभी बुझता ही नहीं, सतत प्रकाशित ही रहता है। (देखिये गीता अ० १०। १०–११, अ० ४। ३५)।

श्री भगवान्नामजप तथा श्री हरि कथा श्रवण से ज्ञान स्वयं होता है और ज्ञान से भक्ति होती है। वास्तव में तो श्री भगवन्नाम, श्री भगवत्कथा और श्री भगवद्भक्ति—ये तीनों ही मणि हैं, जो बिना घृत और बाती के प्रकाश देती रहती हैं। इनको हवा बुझा सकती नहीं और न पतंगों के आक्रमण का ही भय है।

(१)

राम नाम मनि दीप धरु जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहेरहुँ जौं चाहसि उजियार ।।

(२)

राम चरित चिंतामनि चारु। संत सुमिति तिय सुभग सिंगारु ।।

(३)

राम भगति चिंतामणि सुन्दर। बसइ गरुड़ जाके उर अन्तर ।।
परम प्रकाश रूपदिन राती। नहिं कछु चहिअ दिया घृत बाती ।।
मोह दरिद्र निकट नहिं आवा। लोभ बात नहिं ताहि बुझावा ।।
प्रबल अविद्या तम मिटि जाई। हारहिं सकल सलभ समुदाई ।।

आज के युग में जब चारों ओर हाहाकार मचा हुआ है, कहीं दीवाली हो रही है तो कहीं दीवाला, गाय का घी तक नहीं मिलता, अमीरों की अटारियों पर बिजली की बत्तियों के जलाने में सैंकड़ों रुपये खर्च होते हैं तो

कहीं गरीबों के घर पर मिट्टी का दीपक भी नहीं। कहीं मालपूआ छनता है तो कहीं सत्तू भी नहीं मिलता—कितना अच्छा होता कि श्री गीता रामायण के पाठक ऐसे ही दीवाली मनाते, जैसी राम राज्य में मनायी थी।

सब गुनग्य पंडित सब ग्यानी। सब कृतग्य नहिं कपट सयानी॥
सब के गृह-गृह होहिं पुराना। रामचरित पावन बिधि नाना॥
नर अरु नारि राम गुन गानहिं। करहिं दिवसनिसि जात न जानहिं॥
बहु मनि रचित झरोखा भ्राजहिं। गृह-गृह प्रतिमनिदीप बिराजहिं॥

॥ घर में घी का दीप और हृदय में ज्ञान-दीप। यही याद दिलाने के लिए यह दीवाली प्रतिवर्ष आती है और चली जाती है।

———

श्री भगवन्नाम की अपार महिमा

भक्ति के दो प्रधान अङ्ग हैं—नाम-कीर्तन और गुण–कीर्तन। इसीलिए संतो की महिमा का वर्णन करते हुए भगवान् श्री रामचन्द्रजी कहते हैं–

गावहिं सुनहिं सदा मम लीला। हेतु रहित परहित रत सीला ॥

(अरण्य का०)

विगत काम मम नाम परायन। शांति बिरति बिनती मुदितायन ॥

(उत्तर का०`

मम गुन ग्राम नाम रत, गत ममता मद मोह।
ताकर सुख सोइ जानइ, परानंद संदोह ॥

(उत्तर का०)

भगवान् में जैसा–जैसा गुण है अथवा भगवान् जैसी–जैसी लीला करते हैं, उसी के अनुरूप उनका नाम पड़ जाता है। उनका प्रत्येक नाम उनकी लीला और गुणों का द्योतक है—जैसे 'माखनचोर'. 'श्यामसुन्दर' आदि। इसी कारण भगवान् के गुण–कीर्तन तथा नाम–कीर्तन में कुछ भी भेद नहीं है तथा दोनों का फल भी एक ही है। तभी तो श्री रामचरितमांनस में दोनों के फल में एकता यों दिखाई गयी है—

नाम	गुण अथवा लीला
आखर मधुर मनोहर दोऊ ॥	परम मनोहर चरित अपारा ॥
लोक लाहु परलोक निबाहू ॥	प्रिय पालक परलोक लोक के ॥

स्वाद तोष सम सुगति सुधा के ।। सोइ बसुधा तल सुधा तरंगिनि ।।
एहि महँ रघुपति नाम उदारा ।। सोइ संवाद उदार जेहि विधिभा ।।
राम नाम को कलपतरु ।। अभिमत दानि देवतरु बर से ।।
जासु नाम भव भेषज ।। भव भेषज रघुनाथ जस ।।
राम नाम मनि दीप धरु ।। राम कथा चिंतामनि चारू ।।
कलिजुग केवल नाम अधारा ।। कलिजुग केवल हरिगुन गाहा ।।
नाम सकल कलि कलुष विभजन ।। राम कथा कलि कलुष बिभंजनि ।।
नाम जपत मंगल दिसि दहहूँ ।। जग मंगल गुन ग्राम राम के ।।
करतल होहिं पदारथ चारी ।। जो दायक फल चारि
तिन्हहि न पाप पुंज समुहाहीं ।। अघ कि रहइ हरि चरित्र बखानें ।।
महामंत्र जेहि जपत महेसू ।। मंत्र महामनि विपय ब्याल के ।।
हित परलोक लोक पितु माता ।। प्रिय पालक परलोक लोक के ।।

श्रीमद्गोस्वामीजी के उपर्युक्त वचनों से यह सिद्ध हो जाता है कि भगवान् के नाम-कीर्तन तथा गुण (लीला)-कीर्तन में कुछ भी भेद नहीं है। दोनों की महिमा तथा फल एक ही है। सत्य तो यह है कि भगवान् का प्रत्येक नाम उनकी लीलाओं का ही समास-रूप है अथवा यों कहिये कि उनके प्रत्येक नाम की व्याख्या ही उनकी लीला है। इसलिए जहाँ-जहाँ भगवन्नाम की जो महिमा बतायी जाय, वही उनकी लीलाओं के लिए भी समझनी चाहिए।

भगवन्नाम की महिमा का वर्णन जब स्वयं भगवान् भी नहीं कर सकते, तब फिर इस दीन लेखक की लेखनी में क्या शक्ति है जो कुछ भी लिख सके। स्वयं श्रीमद्गोस्वामी जी लिखते हैं—

कहौं कहाँ लगि नाम बड़ाई। राम न सकहिं नाम गुन गाई ।।

फिर भी ऋषि-मुनि-प्रणीत धर्मग्रन्थों में जो नाम-महिमा का वर्णन है, वही संक्षेप में 'स्वान्तःसुखाय' तथा 'निज गिरा पावन करन कारन' यहाँ लिखा जाता है—

श्रीशंकरजी पार्वती जी से कहते हैं—

तन्नामकीर्तनं भूयस्तापत्रयविनाशनम् ।
सर्वेषामेव पापानां प्रायश्चित्तमुदाहृतम् ।।
नातः परतरं पुण्यं त्रिषु लोकेषु विद्यते ।
नामसंकीर्तनादेव तारकं ब्रह्म दृश्यते ।।

अर्थात् श्रीभगवन्नाम–कीर्तन से आध्यात्मिक (काम, क्रोध, भय, वैर, डाह, आदि से उत्पन्न मानस दुःख), आधिदैविक (वायु, वर्षा विजली, अग्नि आदि से उत्पन्न दुःख), और आधिभौतिक (मनुष्य, राक्षस, पशु, पक्षी आदि से उत्पन्न दुःख)—इन तीनों तापों का समूल नाश हो जाता है और सब प्रकार के पापों का प्रायश्चित होता है। श्रीभगवन्नाम–कीर्तन–मात्र से ही मनुष्य साक्षात् भगवान् के दर्शन प्राप्त कर सकता है।

इतना महान् होने पर भी यह सुगम इतना है कि इस भगवन्नाम का ग्रहण पुरुष–नारी, ब्राह्मण–शूद्र–सभी कर सकते हैं और परम पद को प्राप्त कर सकते हैं—

ब्राह्मणःक्षत्रिया वैश्याः स्त्रियः शूद्रान्त्यजातयः ।
यत्र तत्रानुकुर्वन्ति विष्णोर्नामानुकीर्तनम् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तास्तेऽपि यान्ति सनातनम् ।।

सुमिरत सुलभ सुखद सब काहू । लोक लाहु परलोक निबाहू ।।

इस नाम-कीर्तन में कोई देश–काल तथा शौचाशौच का नियम भी नहीं है—जहाँ–तहाँ जिस किसी भी अवस्था में कीर्तन किया जा सकता है—

न देशकालनियमः शौचा शौचविनिर्णयः ।
पर संकीर्तनादेव राम रामेति मुच्यते ।।

इस भगवन्नाम–कीर्तन में विशेषता यह है कि दुष्टचित्त से अथवा भय, शोक, आश्चर्य, हँसी–मजाक अथवा संकेत के बहाने उच्चारण कर लेने से भी परमपद की प्राप्ति हो जाती है—

आश्चर्ये वा भये शोके क्षते वा मम नाम यः।
व्याजेन वा स्मरेद् यस्तु स याति परमां गतिम् ॥
सांकेत्यं पारिहास्यं वा स्तोभं हेलनमेव वा।
वैकुण्ठनामग्रहणमशेषाघहरं विदुः ॥

भाय कुभाय अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ ॥
राम नाम कहि जे जमुहाहीं। तिन्हहि न पाप पुंज समुहाहीं ॥

इतना ही नहीं, यह नाम-कीर्तन तो खाते-पीते, सोते-जागते, चलते-फिरते—हर समय किया जाने-योग्य है, इसके लिए कहीं प्रतिबन्ध नहीं।

गच्छंस्तिष्ठन् स्वपन् वापि पिबन् भुञ्जञ्जपंस्तथा।
कृष्ण कृष्णेति संकीर्त्य मुच्यते पापकञ्चुकात् ॥
कृष्णेति मङ्गलं नाम यस्य वाचि प्रवर्तते।
भस्मीभवन्ति सद्यस्तु महापातककोटयः ॥

जिस भाग्यवान् पुरुष की जिह्वा पर सदा भगवन्नाम विराजमान है. उसके लिए गङ्गा-यमुना आदि तीर्थ कोई विशेष महत्त्व नहीं रखते। ऋग्वेद-यजुर्वेदादि चारों वेद उसने पढ़ लिये, अश्वमेधादि सभी यज्ञ उसने कर डाले—

न गंगा न गया सेतुर्न काशी न च पुष्करम्।
जिह्वाग्रे वर्तते यस्य हरिरित्यक्षरद्वयम् ॥
ऋग्वेदोऽथ यजुर्वेदः सामवेदो ह्यथर्वणः।
अधीतास्तेन येनोक्तं हरिरित्यक्षरद्वयम् ॥
अश्वमेधादिभिर्यज्ञैर्नरमेधैः सदक्षिणैः।
यजितं तेन येनोक्तं हरिरित्यक्षरद्वयम् ॥
तेन तप्तं हुतं दत्तमेवाखिलं
तेन सर्वं कृतं कर्मजालम्।

येन श्री रामनामामृतं पानकृत-

मनिशमनवद्यमवलोक्य कालम् ।।

यदि कोई चाण्डाल भी हो तो भगवन्नाम का उच्चारण करके श्रेष्ठ तथा कृतकृत्य हो जाता है—उसके लिए यज्ञ-तप आदि कुछ भी करना बाकी नहीं रह जाता ।

यन्नामधेमश्रवणानुकीर्तनाद्

यत्प्रह्वणाद् यत्स्मरणादपि क्वचिद् ।

श्वादोऽपि सद्यः सवनाय कल्पत

कुतः पुनस्ते भगवन्नु दर्शनात् ।

अहो बत श्वपचोऽतो गरीयान्

यजिह्वाग्रे वर्तते नाम तुभ्यम्

तपुस्तपस्ते जुहुवः सस्नुरार्या

ब्रह्मानूचुर्नाम गृणन्ति ये ते ।।

श्रीमद्भागवत ३ । ३३ । ६-७

नीच जाति श्वपचौ भलो जपै निरंतर राम ।

उँचों कुल केहि काम को जहाँ न हरि को नाम ।।

तुलसी जाके मुखन ते धोखेउ निकसत राम ।

ताके पग की पगतरी मेरे तन को चाम ।।

कहाँ तक लिखा जाय । भगवन्नाम की महिमा अपार है ।

जो कोई इस भगवन्नाम-महिमा को केवल अर्थवाद मान बैठते हैं, वे नराधम हैं और नरक के भागी होते हैं—

अर्थवादं हरेर्नाम्नि सम्भावयति यो नरः ।

स पापिष्ठो मनुष्याणां नरके पतति स्फुटाम् ।।

कल्याणकामी पुरुषों को चाहिए कि श्री भगवन्नाम की महिमा पर दृढ़ विश्वास करके उसका निरन्तर जप करें। यह भवसागर उनके लिए गोखुर बन जायगा। स्वयं नाम जपना चाहिये और दूसरों से जपवाना चाहिये। तभी तो श्री शंकरजी पार्वती जी से कहते हैं—

तस्माल्लोकोद्धारणार्थ हरिनाम प्रकाशयेत्।
सर्वत्र मुच्यते लोकों महापापात् कलौ युगे ॥

लोगों के उद्धार के लिए सर्वत्र श्रीभगवन्नाम का प्रकाश करना चाहिय। कलियुग में जीव एकमात्र श्रीहरिनाम से ही सारे महापापो से छुटकारा पा सकेंगे।'

तुलसीदास हरि नाम सुधा तजि सठ हठि पियत विषय विषमागी ॥
सूकर स्वान सृगाल सरिस जन जनमव जगत जननि दुखलागी ॥

भगवान् सब को सद्‌बुद्धि प्रदान करें।

(कल्याण भक्ति अंक)

भक्त और भगवान

आप गीता जी का अध्ययन करते होंगे। चौथे अध्याय के ११ वें श्लोक में भगवान् कहते हैं।

"ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ॥"

जो भगवान् का भजन जिस भाव से करता है भगवान् भी अपने भक्त का भजन वैसे ही उसी भावना से करते हैं। आप अपना सर्वस्व भगवान् को दे दीजिए तो भगवान् जी अपना सर्वस्व आपको दे देंगे। श्री सुदामा जी अपना सर्वस्व तीन मुट्ठी तन्दुल लेकर भगवान् के पास गये। भगवान् ने उसे खाकर तीन लोकों की संपत्ति दे दी। आप भगवान् के लिए एक कदम बढ़ाइयेगा तो वे भी आपके लिए एक कदम बढ़ाकर आगे आजायेंगे। पर एक बात है। आपका कदम बहुत छोटा होता है। पर भगवान् का एक कदम तो इतना बड़ा है कि तीनों लोकों को उन्होंने नाप लिया था। इसी तरह यदि आप भगवान् के लिए रोयेंगे तो भगवान् भी आपके लिए रोते रहेंगे। यही उनका नियम है। इस विषय में एक कथा मैंने किसी सन्त-पुरुष के द्वारा लिखित पुस्तक में पढ़ी है। वह यों है :—

एक बार श्रीकृष्ण जी एकान्त में विराजमान थे। उनके नयनों से अश्रु की सरिता बह रही थी। अचानक एक गोपी वहाँ पहुँच गयी। भगवान् को रोते हुए जानकर वह सहम गई। पाँव थरनि लगे, आगे बढ़ने का साहस नहीं हुआ। भगवान् इस तरह रोवें इसका कारण क्या हो सकता है। यह वह गोपी समझ न सकी। किसी तरह साहस करके वह भगवान् के पास खड़ी हो गई और रोने का कारण पूछने लगी। भगवान् ने कहा—"गोपी प्रेम में

हँसना कब होता है। वहाँ तो रोना ही रोना है।" हृदय ही प्रेम की आंच से पिघल-पिघल कर पानी होकर निकल जाता है। मैं तो रोता ही रहता हूँ। पर किसी को ज्ञान नहीं है। यह तो गुप्ततम विषय है। तुमने आग्रह किया मैंने तुम से कह दिया किसी से कहना मत, खबरदार ! जिस तरह से मेरे प्रेमी मेरे लिए निरन्तर आँसुओं की धारा बहाते रहते हैं उसी तरह मैं भी उनके लिए निरन्तर आँसुओं की धारा बहाया करता हूँ। सखी ! तुम इसको आसूँ समझती हो यह तो गंगा यमुना की पवित्र धारा है। जो कोई इसमें मज्जन कर लेता है, उसके सभी ताप-संताप समाप्त हो जाते हैं। वह कृत-कृत्य हो जाता है। और सारे पृथ्वी मंडल को पावन करता रहता है। मेरे बहुत से भक्त, गोपियों और मेरी प्रेयसी राधिका जी भी निरन्तर मेरे लिए रोती रहती हैं। अतः मुझे भी उनके लिए रोना ही है। यही कारण है कि "तुम मुझे रोते देख रही हो"। गोपी यह सुनकर प्रेम विभोर हो गई।

सुनते हैं एक बार धर्मराज युधिष्ठिर भगवान् श्री कृष्ण के दर्शन के लिए गये। वहाँ देखते हैं कि भगवान् ध्यान में मग्न हैं। वे सोचने लगे कि सारा संसार तो इनका ध्यान करता है, पर वे किसका ध्यान करते हैं। इनसे भी कोई महान् है क्या ? वे सोचते ही रहे कि भगवान् ध्यान से उठ बैठे। धर्मराज ने प्रणाम किया और भगवान् ने भी उनका स्वागत किया। महाराज युधिष्ठिर ने भगवान् से पूछा—"प्रभो मुझे यह उत्कट जिज्ञासा है कि अभी आप किसका ध्यान कर रहे थे।" भगवान् ने कहा—"युधिष्ठिर ! तुम्हें ज्ञान नहीं है। भीष्म मेरा ध्यान कर रहे थे। इसलिए मैं भी उनके ध्यान में मग्न था।" महाराज चुप हो गये।

यदि श्री राधारानी श्रीकृष्ण बन जाती हैं तो श्री कृष्ण राधा बन जाते हैं। भगवान् पीताम्बर इसलिये धारण करते हैं कि श्री राधिका जी के दिव्यातिदिव्य शरीर का रङ्ग है। जैसे ही राधिका रानी नीलाम्बर इसलिए धारण करती हैं कि भगवान् का रङ्ग नीला है।

भगवान् भक्तों की इच्छा पूर्ण करते हैं और भक्त भगवान् की। भक्त भगवान् का नाम रटता है और भगवान भक्त का नाम। किसी एक भक्त ने

भगवान् से पूछा, 'भगवान ! जो भक्त जीवन पर्यन्त आपका नाम जपता रहता है पर अन्त में किसी कारणवश वह जप करने में असमर्थ हो जाय तो उसकी दशा क्या होगी ? उसका पतन तो नहीं हो जायगा ?

भगवान् ने कहा—"भाई, यदि असमर्थता के कारण वह मेरा जप नहीं कर सकता तो मैं उसके नाम का जप करने लगता हूँ। अहा ! कितनी दयालुता और भक्त वत्सलता है। ऐसे भगवान् को जो भूलकर भोगों में भटकता रहता है, वह वास्तव में नमकहराम ही है। उसकी माता ने उसको व्यर्थ ही नौ महीने तक पेट में रक्खा। वह तो उसकी यौवन विटप के लिए कुठार ही है।

तुलसी राम-सनेह-सील लखि,
जो न भगति उर आई।
तौ तेहि जाय जनमि जननि,
जड़ तनु तरुणता गवाई ॥"
"जाय जनमि जग सो महि भारू।
जननि जोवन विटप कुठारु ॥"

धन्य है वे जो भगवत्प्रेम में आसुओं की धारा में मज्जन करते रहते हैं। ऐसे पुरुषों के दर्शन-स्पर्शन से ही पाप-परायण पुरुषों का भी जीवन पावन हो जाता है। प्रेम तो प्रेमी की ही कृपा से प्राप्त होता है और अन्य उपाय ही क्या है।

जिस प्रेम में व्याकुलता नहीं वह प्रेम ही कैसा। प्रेम तो रुलाता है ही। रोते रहिये जब तक प्रेम नहीं मिला है। और मिल जाय तो कहना ही क्या है। रोना बन्द थोड़े ही होने का। मिलने पर रोना और नहीं मिलने पर भी रोना। उसका मिलना और नहीं मिलना एक सा है। योग और वियोग समान है। मछली को पानी नहीं मिलता तो प्राणों का विसर्जन होकर रहेगा। और पतंगों को दीपक मिल जाय तो प्राणों का विसर्जन। निराला है पथ प्रेमी का न जाने इसमें कौन-सा नशा है। यह प्रेमी जाने।

गो माता की रक्षा कीजिए

नमो ब्रह्मण्य देवाय गोब्राह्मण हिताय च।
जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः।।

हमारे आर्य ग्रन्थों में गोमाता की बड़ी महिमा गायी गई है। बात है भी सत्य। गाय के बिना भारतवर्ष कभी भी सुखी नहीं हो सकता। वास्तव में गाय भारतमाता का प्राण है। इसका रहस्य नहीं जानने के कारण ही गाय की अवहेलना हो रही हैं।

प्रत्येक हिन्दू शास्त्र और पुराणो के अनुयायी है। जो शास्त्र और पुराणों को नहीं मानता वह हिन्दू कहलाने का अधिकारी है भी नहीं। माधव दिग्विजय में हिन्दू शब्द की व्याख्या इस प्रकार की गई है—

ओंकार मूल मन्त्राढय: पुनर्जन्म दृढ़ाशयः।
गो भक्ता भारतगुरुर्हिन्दू हिंसन-दूषकः।।

अर्थात् ओंकार जिसका मूल मन्त्र है, पुनर्जन्म में जिसका विश्वास है जो गो भक्त हैं, जिसका प्रवर्त्तक भारतीय हो और जो हिंसा को निन्द्य मानता हो वही हिन्दू है।" शास्त्र-पुराणों में ओंकार की, पुनर्जन्म की और गो माता की चर्चा स्थान-स्थान पर आई है अतः जो शास्त्र-पुराणों का मानने वाला है वह गों माता की सेवा क्यों नहीं करेगा।

जिस दिन से देश में गो हत्या होने लगी एवं शास्त्र-पुराणों के वचनों पर से मनुष्य की आस्था कम होने लगी उसी दिन से हम दुःखी एवं दरिद्र हो

गये । विचार करके देखा जाय तो संसार में गाय के समान दूसरा कोई धन नहीं है । आर्थिक संकट को दूर करने के लिए गो-सेवा एक उत्तम साधन हैं । इसीलिए तो महाभारतकार की घोषणा है कि—

गोभिस्तुल्यं न पश्यामि धन किञ्चिदिहाच्युत ।

अर्थात—इस संसार में गोओं के समान दूसरा कोई धन मैं नहीं समझता । यही कारण है कि स्कन्द पुराण में गाय की स्तुति इस प्रकार की गई है :—

त्वं माता सर्व देवानां त्वं च यज्ञस्य कारणग ।
त्वं तीर्थ सर्व तीर्थानां नमस्तेऽस्तु सदानघे ॥

"हे पाप रहिते ! तुम समस्त देवों की जननी हो । तुम यज्ञ की कारण रूपा हो । तुम समस्त तीर्थों की महातीर्थ हो । अतः तुमको सदैव नमस्कार है ।" महाभारत में एक स्थान पर लिखा है कि गाय ही यज्ञ के फलों का कारण है और गायों में ही यज्ञ की प्रतिष्ठा है—

गावो यज्ञस्य हि फलं गोषु यज्ञाः प्रतिष्ठिताः ।

इतना ही नहीं गाय के दर्शन-स्पर्शन से जो लाभ होता है वह भी साधारण नहीं है । स्वप्न में भी कहीं इसका दर्शन हो जाय तो कल्याण लाभ और आधि-व्याधियों का नाश हो जाता है ।

जो पुरुष लक्ष्मी की प्राप्ति चाहता है उसको चाहिए कि तन-मन और धन से गोमाता की सेवा करे । अवश्य ही लक्ष्मी की प्राप्ति हो जायगी । महापुरुषों की उक्ति है :—

गवां सेवा तु कर्त्तव्या गृहस्थैः पुण्य लिप्सुभिः ।
गवां सेवापरा यस्तु तस्य श्रीर्वर्धतेऽचिरात् ॥

पुत्र की कामना से जो गाय की सेवा करता है उसको पुत्र प्राप्ति होती है क्योंकि ऋषियों के ऐसे वचन मिलते हैं :—

विष्णो प्रसादो गोश्चापि शिवस्याप्यथवा पूनः ।

"भगवान् विष्णु, गौ और भगवान शंकर की कृपा से पुत्र की प्राप्ति होती है । गो माता की अखंड सेवा करके दिलीप को किस प्रकार पुत्र की प्राप्ति हो गयी थी यह कथा रघुवंश में है । राजा ऋतम्भर ने जाबालि मुनि की आज्ञा से गो-सेवा की थी । फलत. उनके सत्यवान नाम के परम धर्मात्मा पुत्र हुए ।

कहाँ तक कहा जाय । गाय की अपरम्पार महिमा है । किसी गो भक्त के अनुभवानुसार गाय हमारे दुग्ध भुवन की देवी है ।

यदि गोमाता की सेवा अच्छी प्रकार की जाय तो देश भर की भूखमरी मिट जायगी और कोई नंगा नहीं रहेगा । जहाँ-जहाँ इसके गोवर और मूत्र का प्रयोग एवं सदुपयोग किया जायगा वहाँ-वहाँ से बीमारी भी दूर हो जायगी ।

अतः प्रिय भारतवासियों ! अब भी आप जग जाइये और तन-मन-धन से गोमाता की भरपूर सेवा कीजिये । खुले आम गो-हत्या का जोरदार विरोध कीजिये और स्थान-स्थान पर गो रक्षण केन्द्र, गोशाला एवं गो दुग्ध वितरण केन्द्र की स्थापना कीजिये । खूब दूध, दही और घी का सेवन कीजिये और स्वस्थ जीवन बिताइये ।

बोलिये गोमाता की जय ।

श्री रघुनाथाष्टकं

जय जगदीश्वर जय पीताम्बर सुखसागर साकार हरे ।
जय जलशायी जय भय हारी गुणराशी ओंकार हरे ॥
जय धरणी धर जय दूषणहर जय-जय करुणागार हरे ।
जय असुरारी जय खल हारी परम कृपालु उदार हरे ॥
रघुवर जय जय राम रमापति दामोदर दातार हरे ।
जनकसुतावर जय रघुवंशी रक्ष रक्ष रघुनाथ हरे ॥
जय कालेश्वर जय कामेश्वर रमानाथ अवधेश हरे ।
रामेश्वर जय कौशलेश जय अवधनाथ वरदेश हरे ॥
जय रावणहर जय कवन्धहर लंकेश्वरपति देव हरे ।
गौतमतियगति गुणागार जय गुणातीत गणनाथ हरे ॥
देव देव जय वासुदेव जय विश्वम्भर विश्वेश हरे ।
जनकसुतावर जय रघुवंशी रक्ष रक्ष रघुनाथ हरे ॥
परम पिता जय परमेश्वर जय पूर्ण सनातन शान्त प्रभो ।
अखिलेश्वर जय भुवनेश्वर जय वेदवेद्य जय वेद विभो ॥
सब सुखदायक कर धनुसायक रघुनायक हरि की जय हो ।
जय सब लायक विश्व विधायक नरनायक नर की जय हो ।
कृपासिन्धु सुखसिन्धु दयामय कृपानाथ भवनाथ हरे ।
जनकसुतावर जय रघुवंशी रक्ष-रक्ष रघुनाथ हरे ॥
जय दुखहारी जय भवहारी अघ हारी जय सुखकारी ।
जय मदहारी जय धनुधारी क्रीट मुकुट धर वनवारी ॥
जय मनमोहन जय मनभावन शोकनशावन सुखदाता ।
जय जयपावन जय जगकारण पापनशावन जगमाता ॥
व्यापक विरज अनामय जय जय जय जय सीतानाथ हरे ।

जनकसुतावर जय रघुवंशी रक्ष रक्ष रघुनाथ हरे ॥
प्राणनाथ भूपाल शिरोमणि बिपतिविदारण वनवासी ।
सक्तनमत सब सोच विमोचन कमलनयन कल्मषनाशी ॥
केशव कलेश हरण केशीहर रमारमण श्री रघुराया ।
कृपा दृष्टि से क्षण भर में हर लेते है ममता माया ॥
पाप-ताप-संताप मिटा दो जल्दी दीनानाथ हरे ।
जनकसुतावर जय रघुवंशी रक्ष रक्ष रघुनाथ हरे ॥
मधुसूदन ममता माया से मुझको मुक्त बना लेना ।
विषय वारि में डूबा हुआ मन मीन इसे अपना लेना ॥
काम-क्रोध-मद-लोभ भयंकर को तुम मार भगा देना ।
मन-मन्दिर को बना अमल इसमें तुम धाम बना लेना ॥
दया सिन्धु हो दया दिखा दो विनती सुनलो नाथ हरे ।
जनकसुतावर जय रघुवंशी रक्ष रक्ष रघुनाथ हरे ॥
रघपुङ्गव हो रघुकुल भूषण कभी न कहना नहीं मुझे ।
द्वार पड़ा हूँ आकर तेरे प्रेमदान दो आज मुझे ॥
कृपावीर हो कृपादान दो क्षमावीर कर क्षमा मुझे ।
ज्ञानवीर अज्ञान दूर कर जग से करो विरक्त मुझे ॥
जगतपिता हो अपने शिशु के सिरपर रख दो हाथ हरे ।
जनकसुतावर जय रघुवंशी रक्ष रक्ष रघुनाथ हरे ॥
कृशतनु "कृष्णानन्द" बना हूँ तुम बिनु केशव कृष्ण हरे ।
शरणागत की बाँह पकड़ कर त्राण करो हे विष्णु हरे ॥
आओ अपना लो तुम मुझको आओ करो न देर हरे ।
द्रुपद सुता की टेर सुनी त्यों सुनलो मेरी टेर हरे ॥
जन्म-मरण से मुक्त करो अब हे अनाथ के नाथ हरे ।
जनकसुतावर जय रघुवंशी रक्ष रक्ष रघुनाथ हरे ॥

मानव-जीवन का उद्देश्य और उसकी प्राप्ति

वास्तव में मानव-जीवन का उद्देश्य परम शान्ति की प्राप्ति ही है जिसको हम भगवत्प्राप्ति अथवा मुक्ति भी कहते हैं। भोगों की प्राप्ति इस मानव-जीवन का उद्देश्य कभी भी नहीं हो सकता। क्योंकि संसार के जितने पदार्थ हैं सभी नश्वर, आरम्भ में सुखद और परिणाम में दुःखद हैं। इनसे हमारी न तो जातीय एकता है न आत्मीयता है और न सम्बन्ध। भोगों का सदुपयोग तो भोगों से वैराग्य होने में ही है। और तो क्या इस शरीर से भी हमारा नित्य सम्बन्ध नहीं है। इसीलिए श्रीमद्गोस्वामी जी ने लिखा है—

एहि तनु कर फल विषय न भाई।
स्वर्गउ स्वल्प, अन्त दुखदाई॥

जब हम मोहवश इस देह के साथ सम्वन्ध जोड़ लेते हैं तो अनेक प्रकार की इच्छाएं उत्पन्न होने लगती हैं जिनकी कभी पूर्ति नहीं होती। यदि कभी कोई सुख-भोग प्राप्त भी हो जाता है तो तुरन्त ही उसका वियोग भी अवश्यम्भावी होता है। सुखभोग प्राप्त होने पर तथा उसके भोगने पर मनुष्य जड़, शक्तिहीन और परतन्त्र हो जाता है, नहीं प्राप्त होने पर दीन बना रहता है और सुखभोग के वियोग होने पर दुःखी हो जाता है। सुखभोग से भी भयंकर सुखभोग की आशा है। अतः मनुष्य को चाहिये कि वह सुख-प्राप्ति की न तो आशा ही करे और न प्राप्त सुखभोग से ममता करे। श्री मद्भागवत के ये शब्द कितने सुन्दर हैं :—

"आशा हि परमं दुःखं नैराश्यं परमं सुखम्।"

यदि मनुष्य का किसी के साथ नित्य सम्बन्ध हो सकता है तो वह परमात्मा ही है, जो सर्वत्र है सर्वकाल में है और जिससे जातीयता, और आत्मीयता भी है। क्योंकि वह सर्वत्र है तो वह अपने में भी है अतः कहीं दूर जाने की जरूरत नहीं है और क्योंकि वह सर्वकाल में है अतः वर्तमान में भी है ही। इसलिए उसकी प्राप्ति अभी हो सकती है और अपने में ही हो सकती है। वह अविनाशी है अतः उससे नित्ययोग हो सकता है। बस, मानव-जीवन का चर्म उद्देश्य परमात्मा के साथ नित्ययोग होने में ही है जो परम शान्ति और परमानन्द का हेतु है।

परमात्मा के साथ नित्योग का होना तब तक सम्भव नहीं जब तक मनुष्य शरीर में बद्ध है। सर्व प्रथम शरीर का राग मिटाना होगा। शरीर के स्वरूप को जान लेने से शरीर का राग अवश्य ही मिट जाता है। शरीर का राग मिटते ही भोगों का राग मिट जायगा और भोगों का राग जब मिट जायगा तो मनुष्य का भोगों के पीछे दौड़ना बन्द हो जायगा और परम प्रभु से नित्य योग हो जायगा। इसीलिए अष्टावक्रजी ने भी पहले देहाभिमान मिटाने के लिये ही कहा है :—

देहाभिमान पाशेन चिरं बद्धोऽसि पुत्रक।
बोधोऽहं ज्ञान खड्गेन तं निकृत्य सुखी भव॥

परन्तु यह देहाभिमान करते-करते अनन्त जन्म बीत गये हैं इसीलिए इसका मिटाना कोई खेल नहीं, पर निरन्तर विचारा-अभ्यास के द्वारा साधक इसको मिटाने में समर्थ हो सकता है। श्री वसिष्ठ जी कहते हैं :—

जन्मान्तर चिराभ्यस्ता राम संसार संस्थितिः।
सा चिराभ्यास योगेन बिना न क्षीयते क्वचित्॥

विचार करते-करते शरीर के आदि, मध्य और अन्त का ज्ञान हो जायगा जिससे शरीर के साथ अरुचि और असङ्गता हो जायगी। शरीर के साथ अरुचि हो जाने से संसार के साथ अरुचि हो जायगी क्योंकि शरीर और संसार सजातीय है। यही बात इस श्लोक में कही गई है :—

विचारः सफलस्तस्य विज्ञेयो यस्य सन्मतेः ॥
दिनानुदिनमायाति तानवं भोग गृध्रता ॥

शरीर और संसार से सम्बन्ध टूट जाने पर भगवान् के साथ नित्य सम्बन्ध हो जाता है जिससे मनुष्य परम शांति को प्राप्त कर कृतकृत्य हो जाता है। पतः मनुष्य को निरन्तर विचार करते रहना चाहिये। विचार के द्वारा ही ज्ञान अथवा मोक्ष की प्राप्ति सुलभ है अन्यथा नहीं :—

"विचारान्मोक्षमाप्नोति तस्मारसदा विचारयेत्।"

श्री शङ्कराचार्य महाराज भी कहते हैं—नोत्पद्यते बिना ज्ञानं विचारेणान्य-साधनैः यही कारण है कि विचार को मोक्ष का द्वार बताया गया है :—

मोक्षद्वारे द्वारपालाश्चत्वारः प्रकीर्तिताः ।
शमो विचारः सन्तोषश्चतुर्थ। साधुसङ्गमः ॥

परन्तु विचार के लिए भी शुद्धान्तःकरण चाहिए। जब तक अन्तःकरण में काम, क्रोध, लोभ और मोह छिपे हुए हैं तब तक शुद्ध सात्त्विक विचार उत्पन्न ही नहीं होगा। श्री मच्छङ्कराचार्य महाराज ने इसलिए स्पष्ट कहा है कि :—

'कामं क्रोभं लोभं मोहं त्यक्त्वाऽऽत्मानं भावयकोऽहम्'

अन्तकरण को शुद्ध करने के लिये निःस्वार्थ भाव से सभी प्राणियों की सेवा करकी चाहिये। सत्यसंग, स्वाध्याय, भगवत्पूजा, तीर्थं यात्रा, सात्त्विक दान, सात्त्विक भोजन, श्री भगवन्नाम-जप आदि साधनों के द्वारा अन्तःकरण पवित्र हो जाता है तो भगवत्प्राप्ति में कोई कठिनाई नहीं होती है, क्योंकि भगवान् मिलते तो उसी को हैं जिसको वे चुन लेते हैं। चुनते हैं वे उसी को जो उनसे मिलने के लिये व्याकुल रहता है। यह व्याकुलता तभी होती है, जब अन्तःकरण से मल विक्षप और आवरण निकल जाते हैं।

सोइ जानत जेहि देहु जनाई।
जानत तुम्हहिं तुम्हइ होइ जाई ॥
तुम्हरिहि कृपा तुम्हहि रघुनन्दन !
जानहिं भगत-भगत उर चन्दन ॥

जीवन सुधार के लिए

१. प्रातः काल सूर्योदय के तीन घन्टे पहले उठना चाहिये। जो तीन घन्टे पहले नहीं उठ सकते हैं वे कम से कम एक घन्टा पहले तो अवश्य ही उठ जाया करें।

२. उठ करके एकाग्र चित्त होकर भगवान का स्मरण करे।

३. मेरे द्वारा सम्पादित 'नित्योपयोगी मन्त्र' नाम की पुस्तक का पाठ करने से बहुत लाभ होता है। इसमें कल्याणकारक मंगलमय स्तोत्रों का संग्रह है। इसमें प्रात-स्मरणीय स्तोत्रों का भी संग्रह है जिनके पाठ करने से प्रभात तो मंगलमय हो जाता है। साथ ही सारा जीवन मंगल-मय हो जाता है।

४. प्रतिदिन अपने माता एवं अन्य गुरुजनों के पाद् पद्मों में सादर नमस्कार करें। जो निकट नहीं हों उनको मानसिक प्रणाम करें।

५. शौच स्नान से निवृत होकर अपने इष्ट की उपासना, गीता रामायण का पाठ, संध्यातर्पण एवं इष्ट मन्त्र का जप करें।

६. अतिथि, देवता, पितर, पशु पक्षी एवं भिक्षुकों को यथा शक्ति सन्तुष्ट करके ही भोजन करे।

७. धनोपार्जन के लिए छल-कपट, बेइमानी, चोरी, असत्य और घूस खोरी का आश्रय न ले।

८. परिवार के सदस्यों के साथ प्रेमपूर्वक व्यवहार करे।

९. सामर्थ्य हों तो प्रतिदिन कुछ न कुछ दान अवश्य करे। अन्नदान, जलदान, वस्त्रदान भी करे।

१०. घर एवं तनकी सफाई एवं सुन्दरता पर ध्यान रखे पर उसमें आसक्त न रहे।

११. शरीर की रक्षा तो करे पर शरीर की चिन्ता न करे और न शरीर का दास न बन जाय।

१२. किसी के साथ कटु भाषण न करे। सबका सम्मान एवं हित करे।

१३. विनय शील बन कर रहे।

१४. विलासिता एवं फैशन से कोसों दूर रहे व्यर्थ व्यय करने की आदत को छोड़ दे।

१५. शरीर से काम लेता रहे। निकम्मा नहीं रहने दे।

१६. अन्याय का धन घर में आने ही न दे।

१७. अपने कर्मों को ईश्वरार्पण करता रहे।

१८. एकादशी तिथि पर उपवास तथा फलाहार करे।

१९. उचित व्यवहार में कृपणता न करे।

२०. शोक-क्रोध के वशीभूत न हो।

२१. देवतार्चन अवश्य करे।

२२ भगवान एवं भक्त की निन्दा न करे न सुने।

२३. भगवान् के स्तोत्रों का पाठ प्रतिदिन करे। (इसके लिए मेरे द्वारा सम्पादित 'नित्योपयोगी मन्त्र' नाम की पुस्तक देखिये।

२४. भगवान् में अविचल विश्वास रखें।

२५. धर्म पालन के लिए कष्टों को सहर्ष स्वीकार करे।

२६. तुलसी के बिरवे की सेवा अवश्य करे। इसको प्रतिदिन सींचे और प्रदक्षिणा करे।

२७. भगवान् के उत्सवों को उत्साह पूर्वक मनावे। श्री रामनवमी, श्री जन्माष्टमी, श्री गीता जयन्ती, श्री रामायण जयन्ती, श्री राधिकाष्टमी, श्री तुलसी जयन्ती आदि प्रधान उत्सव हैं जो घर–घर एवं गांव–गांव में मानने योग्य हैं।

२८. गीता–रामायण का श्रवण–मनन प्रति दिन करे।

२६. वर्ष भर में एक दो वार श्री रामचरित मानस का अखण्ड पाठ एवं नवाह्न–परायण अपने घर पर करावे।

३०. भगवद्विमुख पुरुषों का संग भूलकर भी न करे।

३१. पीपल, आम, नीम, बट आदि वृक्षों की सेवा करे।

३२. गोशाला वनावे। घर में कम से कम एक गाय रखकर उसकी अधिक से अधिक सेवा करे।

३३. वर्ष भर में कम से कम एक वार तीर्थों में जाकर निवास करे।

३४. सद्गुरु से दीक्षा अवश्य लें। गुरु की सेवा करे।

३५. कार्त्तिक, माघ और वैशाख महीनों में अवश्य पाठ करे।

३६. जानकर किसी का बुरा न करे।

३७. जानकर झूठ न बोले।

३८. हँसी मजाक में भी असत्य भाषण न करे।

३६. हँसी मजाक में समय नष्ट न करे।

४०. किसी भी जीवों से घृणा न करे।

४१. सोते समय रात में बाल–बच्चों के साथ श्री हरिकीर्तन करे।

४२. रात में दस बजे के बाद बिना कारण जागता न रहे।

४३. किसी से दान लेने की इच्छा न करे।

४४. हर किसी के साथ न खाय। किसी का झूठा न खाय।

४५. प्रकृति से प्रतिकूल वस्तु न खाय।

४६. जूठा न छोड़े।

४७. सबको बाँटकर खाय। अकेले चुराकर न खाय।

४८. मौन होकर भोजन करे।

जो गृहस्थ उपर्युक्त नियमों का पालन करेंगे उनका अवश्य ही कल्याण हो जायगा।
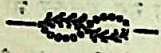
मुद्रक :—हिन्दुस्तान आर्ट कॉटेज, घी वालों का रास्ता जयपुर।

★ श्रीराम ★

सत वचनामृत

१. किसी से कुछ पाने की आशा मत कीजिये। आशा तो अशान्ति की जननी है ही। सेवा कीजिये पर स्वार्थ को छोड़कर।

२. दुर्लभ मानव जीवन का सदुपयोग भगवान् से प्रेम करने में ही है।

३. दुःख को दूर करने के लिये त्याग ही सर्वोत्तम उपाय है।

४. तृष्णा आग है और सन्तोष जल। तृष्णा विष है और संतोष अमृत, तृष्णा मृत्यु है और सन्तोष जीवन। अतः तृष्णा का सर्वथा त्याग कीजिये। यही संतों का आदेस है।

५. सच्चा वीर तो वही है जो सभी परिस्थितियों से प्रसन्न रहता है।

६. आप स्वयं प्रसन्न रहिये और अपने साथियों को प्रसन्न रखिये। प्रसन्नता तो आपका बाना होना चाहिये।

७. संसार में कोई आपका शत्रु नहीं है। सबसे मैत्री भावना रखते रहिये।

८. कलियुग में भगवन्नाम से सुधार बहुत शीघ्र होता है। याद रखिये—

नाम काम तरु काल कलि, दायक परमानन्द।
कहत वेद इतिहास सब, गावत कृष्णानन्द॥

(श्रीकृष्णानन्दजी की लेखनी से)

बोलो सियावर रामचन्द्र की जय।

नोट:—अपने प्रत्येक मनोकामना की पूर्ति के लिए श्रीरामचरितमानस का अनुष्ठान कैसे करना चाहिए इसके लिए श्रीकृष्णानन्दजी द्वारा लिखित "कलियुग का कल्पवृक्ष" नाम की पुस्तक पढ़िये जो सर्वत्र मिल सकती है। पुस्तक विक्रेताओं से पूछिये।

मुद्रक:—हिन्दुस्तान आर्ट कॉटेज, घी वालों का रास्ता, जयपुर